नारी-पुष्पावली

प्रथम भाग

श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधुरी

प्रयाग

पंडित सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से
सुदर्शन प्रेस में छपी।

१६१२

प्रथम बार } { मूल्य।)

नारी-पुष्पावली

प्रथम भाग का सूची पत्र ।

नारी-पुष्पावली

भूमिका

मानव-जीवन की उन्नति की सहायता के लिये साधु-जीवनी का पाठ और उनके सुदृष्टान्त बहुत ही उपकारी हैं। किसी महात्मा ने कहा है, कि सैकड़ों मौखिक (जबानी) उपदेशों से वैसा प्रभाव नहीं होता जैसा एक सुदृष्टान्त से होता है। स्त्रियों के लिए, सती, विद्यावती, धर्म्मशीला नारियों के चरित पढ़ने परम आवश्यक हैं। इस कारण मैंने स्वदेशीया और विदेशीया नारियों के जीवनों का संक्षेप से वर्णन इस पुस्तक में किया है। आशा है कि जैसे मधु-मक्षिकाएँ भांति भांति के फूलों से मधु का संग्रह करके जीवन धारण करती हैं, उसी प्रकार मेरी देश बहनें भी इस पुस्तक में लिखे हुए पुण्यशीला नारियों के जीवनों से शिक्षालाभ करके अपनी और स्वदेश की उन्नति करेंगी। मेरी इच्छा है कि यदि मेरी बहनों को इस पुस्तक से कुछ भी उपकार होवे तो मैं इस नारी जीवनी रूप मनोहर पुष्पावली के और भी कई भाग प्रकाश करूंगी।

हेमन्तकुमारी चौधुरी–पटियाला।

नारी-पुष्पावली

प्रथम भाग

महारानी विक्टोरिया

स्वर्गीया भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया का पुण्यमय नाम आज तक भारतवासियों के हृदय में राजभक्ति का सञ्चार कर रहा है। जिन सद्गुणों से महारानी का जीवन भूषित था वे ऐसे थे कि वे चाहे कुटीरवासिनी क्यों न होतीं, तो भी लोग उन्हें देवी ही कहते। ऐसी पुण्यशीला सद्गुणों से भूषिता महारानी का जीवन चरित्र प्रत्येक नारी को जानना चाहिये। महारानी केवल भारतेश्वरी और साम्राज्ञी रूप से ही प्रसिद्ध नहीं थीं, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में सारे जगत् के नारी समाज की श्रेष्ठ शिरोमणि थीं।

महारानी विक्टोरिया इङ्गलेण्ड के महाराज चौथे विलियम की भतीजी थीं। महाराज विलियम के कोई पुत्र न होने के कारण उनके मरने पर विक्टोरिया को कन्या अवस्था में ही राजपद मिला। अतुल धन

सम्पत्तिशाली राजपद के पाने के संवाद से उनको कुछ भी घमण्ड नहीं हुआ वरन् अपने ताऊ की मृत्यु का संवाद सुन कर बड़ी शोकाकुल हुई, और अश्रुपूर्ण नयनों से धर्म्मगुरु से बोलीं—"आप मेरे लिए परमेश्वर से प्रार्थना करें जिससे मैं इस महान् व्रत को धर्म्म-बुद्धि के अनुसार पालन कर सकूं" यों कहकर आपही हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगीं। प्रार्थना के बाद उन्होंने कृतज्ञ हृदय से राज्य ग्रहण किया और जीवन की अन्तिम अवस्था तक असंख्य प्रजाओं का हित करते करते परलोक गमन किया। महारानी के राज्यकाल को इङ्गलैण्ड के किसी कवि ने जो "स्वर्ण युग" कहा है, सो ठीक है क्योंकि इन्हींके राज्यकाल में क्या इङ्गलैण्ड और क्या भारत की हर तरह उन्नति हुई है। भारत में रेल, तार, बिजली के सहारे से रोग परीक्षा, संवाद भेजना, स्त्री-शिक्षा आदि की उन्नति हुई है। अपने बालकपन, यौवन और वृद्धावस्था में इन्होंने इतने सत्कर्म्म किये हैं, जिनका वर्णन करना कठिन है। अपनी माता के प्रभाव और सत शिक्षा से ही महारानी आदर्श कन्या, आदर्श साम्राज्ञी, आदर्श पतिव्रता, आदर्श माता, आदर्श विद्यावती और आदर्श धर्म्मपरायणा नारी बनीं।

बाल्यकाल में उपयुक्त शिक्षकों और शिक्षिकाओं के पास से भांति भांति की विद्या और कलाएँ सीखी थीं। प्रति रविवार को नियम पूर्वक धर्म्म मन्दिर (गिरजा) में जाकर भक्ति के साथ उपासना और उपदेश सुनती थीं। एक दिन उपदेश के समय ये ऐसे ध्यान से उपदेश सुन रही थीं कि एक भ्रमर इनके सुन्दर मुख पर उड़ता रहा किन्तु इन्हें इस बात की कुछ चिन्ता न थी। इनके पास एक और स्त्री बैठी थी। वह बड़ी घबड़ाई कि राजकन्या तो गम्भीर ध्यान में मग्न है ऐसा न हो कि भ्रमर इनको दुःख दे।" उपदेश सुन कर जब वे बाहर निकलीं तब उस स्त्री ने पूछा, "आप इतने अनुराग से उपदेश सुनती थीं कि भ्रमर का जरा भी ख्याल न था?" महारानी ने सरल भाव से उत्तर दिया, "यदि मैं ध्यान पूर्वक उपदेश न सुनूं तो घर लौट कर अपनी माता को क्योंकर सारा उपदेश सुनाऊं?" महारानी की एकाग्रता का यह कैसा सुन्दर दृष्टान्त है। एक बार उनकी माता ने उनकी अध्यापिका से पूछा, "यह कन्या अपना पाठ अच्छी तरह याद तो करती है? और कभी असत्य व्यवहार तो नहीं करती?" अध्यापिका ने नम्रता के साथ विक्टोरिया की प्रशंसा की और कहा,

"यह कभी मिथ्या-भाषण नहीं करती।" उसी क्षण यह प्रशंसा सुनते ही विक्टोरिया ने बड़ी नम्रता और लज्जा से कहा, "आप भूल गई हैं, मैंने एक दिन तो एक बार मिथ्या वचन कहा था।" माता और अध्यापिका कन्या का सत्यानुराग देख बड़ी प्रसन्न हुईं और आश्चर्य भी करने लगीं। कन्या हाथ जोड़ कर माता से बोली, "माता! मुझे क्षमा करो, मैं आज से कभी झूठ नहीं बोलूंगी।" इसके बाद कभी उन्होंने झूठ नहीं बोला। बालिका विक्टोरिया बचपन से ही दयावती, परदुःखकातरा और प्रेममयी थीं। कभी किसी का दुःख इनसे देखा नहीं जाता। अपनी दरिद्र कुटीरवासी प्रजाओं के कुटीर में जाकर उन्हें अन्न और वस्त्र दान करती थीं। रोगी प्रजाओं की रोग-शय्या के पास बैठ कर उन्हें आशापूर्ण धर्म्मोपदेश पाठ कर के सुनाती थीं। अहंकार और स्वार्थपरता तो चिह्नमात्र भी उनके पवित्र हृदय में न थीं।

यौवन काल में उन्होंने अपना पति स्वयं ही वरण किया। उनका पति के प्रति प्रेम और भक्ति भी आदर्श स्वरूप है। महारानी एकान्त अनुराग के साथ पति सेवा करती थीं और सदा आज्ञाकारिणी

रहतीं। इनकी लिखित पत्रावली में प्रति-प्रेम का वर्णन बड़ी मधुर भाषा में लिखा है जिसे पढ़ने से शुष्क निरस हृदय में भी प्रेम की धारा बहने लगती है। परन्तु यह सौभाग्य महारानी के जीवन में बहुत दिन नहीं रहा। इस सुख-दुःख-पूर्ण संसार में मृत्यु का अधिकार सब के ऊपर है, क्या राजा और क्या प्रजा सब के लिये इसका नियम एकसा ही है। महारानी को भी पतिहीना विधवा होना पड़ा, परन्तु इस असहनीय शोक को उन्होंने बड़े धैर्य्य और शान्ति के साथ सहन किया और चिरकाल के लिये कृष्ण वेश धारण करके ब्रह्मचर्य्य पालन किया। वे किसी आनन्द उत्सव में योग नहीं देती थीं। अग्निहोत्री ब्राह्मण लोग जैसे यज्ञाग्नि को यत्न के साथ चिरकाल गृह में रक्षा करते हैं, उसी प्रकार से पतिप्राणा सती विक्टोरिया ने अपने प्राणपति की स्मृति और प्रेम को हृदय में मरण पर्यन्त धारण किया। उनके जीवन को देख विलास-पूर्ण पाश्चात्य जगत् भी चकित हुआ था। पवित्र प्रेम से भूषिता महारानी सती भारत-नारियों के हृदय में भी पूजिता हो रही हैं।

महारानी विक्टोरिया नौ सन्तानों की माता थीं। इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र इनके पीछे हमारे भारत सम्राट

सप्तम एडवर्ड हुए थे। और इनके ही पौत्र जार्ज पञ्चम अब हमारे वर्तमान सम्राट हैं। विक्टोरिया अपने सन्तानों की शिक्षा में एक ही थीं। बुद्धिमती विक्टोरिया यथासाध्य अपने सन्तानों को सीधी सादी शिक्षा देती थी। वे स्वयं भी बहुत सी शिल्प विद्याओं में निपुण थीं। अपनी कन्याओं को भी इन्होंने पाक विद्या से लेकर नारी जीवन के उपयोगी सब काम सुन्दर रूप से सिखाये थे। पुत्रों को भी उद्भिद्-विद्या, नौ-विद्या, राजनीति, धर्म्मनीति, और विविध भाषा सीखने का प्रबन्ध किया था। हमारे देश में धनी परिवार के बालकों का अपने हाथों से काम करना अपमान समझा जाता है, परन्तु हमारी महारानी का इस विषय पर विशेष ध्यान था। उनकी सन्तान बहुत सा काम स्वयं किया करती थीं। माता की सुशिक्षा के प्रभाव से ही उनके सब पुत्र और कन्याओं ने सुशिक्षित होकर जगत की शोभा बढ़ाई। कहावत है कि एक बार दो सुकुमारी राज कन्याओं ने दासी के मुंह पर रंग का पोंछा फेर दिया और उससे हँसी करने लगीं, जिसे देखतें ही सुमाता विक्टोरिया ने कन्याओं को बहुत शासन किया और दासी के पास

क्षमा मंगवाई, और उन्हीं के रुपयों से दासी के लिये नये कपड़े मंगवा कर उसे इनाम दिये। इसी प्रकार से वह अपने सन्तानों को दूसरों के प्रति सदय व्यवहार करने की शिक्षा देती थीं।

सती विक्टोरिया के शत्रु मित्र सब उन्हें श्रद्धा करते थे। जब तक इस जगत में सतीत्व और पवित्रता का आदर रहेगा तब तक महारानी भारतेश्वरी का नाम भी जगत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से मुद्रित रहेगा। इङ्गलैंड और भारत में सर्व्व प्रकार विद्या और विज्ञान के बल से शिल्पोन्नति महारानी के राज्य में हुई है। कहते हैं कि महारानी ऐसी शुद्ध स्वभाव की थीं कि उनके राज्यारोहण के पहिले अङ्गरेज लोगों की विशेषतः राज दरबार के बड़े रईसों का चरित्र बहुत घृणा-जनक था। इस कारण महारानी की माता उन्हें कभी दरबार में जाने नहीं देती थीं। जब वे महारानी बनी तब उन्होंने यह आज्ञा दी—"हमारे दरबार के आश्रय में किसी प्रकार का अश्लील या अविनय सूचक किसी प्रकार की वार्तालाप या कोई लज्जाजनक अभिनय न होने पावेगा।" पहिले तो इस विषय में कुछ लोगों को

बड़ी कठिनाई हुई क्योंकि उनके दुरभ्यास ऐसे प्रबल थे कि उनको रोकने में उन्हें बहुत ही दुःख हुआ। ऐसे लोग उनकी निन्दा भी करने लगे और विरुद्ध हुए। परन्तु सत साहस जिसके हृदय में है उसे डर क्यों होगा। महारानी के पवित्रचरित्र के प्रभाव से अब वही राजदरबार आदर्श दरबार बना है और इङ्गलैण्ड के धनी लोगों का चरित्र भी अधिकांश रूप में सुधर गया है। सती नारी का प्रभाव अग्नि का सा होता है। अग्नि के संयोग से सारी आवर्जना भी भस्म होकर पृथ्वी के जीवों का परमोपकार साधन करती है। भारतेश्वरी विक्टोरिया भारतवासियों की मातृस्वरूपा थीं। भारत के प्रति उनका बड़ा गंभीर प्रेम था। जब कोई भारत वासी नर नारी उनसे मिलते तो वे बहुत ही आग्रह के साथ उनसे भारतवासियों के विषय में भांति भांति प्रश्न करतीं। यद्यपि वे कभी भारत में नहीं आसकीं तथापि भारत की भाषा सीखने के लिये एक मुंशी को भारत से मंगवाकर बड़े चाव से उससे हिन्दुस्थानी भाषा सीखी थीं। संवाद-पत्रों में सदा भारत के सुख दुःख की खबर पढ़ती थीं। दुःखिनी भारत नारियों के

दुःखमय जीवन को सुखी करने के लिये उन्होंने भारत में स्त्री-चिकित्सक नियुक्त किये और उनकी आज्ञा से भारत के प्रसिद्ध नगरों में स्त्रियों के लिये स्वतन्त्र हस्पताल बनाये गये । भारत की स्त्रियों को धातृ-विद्या और चिकित्सा-शास्त्र सिखाने के लिये भी प्रबन्ध किये जिससे सदा के लिये भारतवासिनियां उनका यश गावेंगी।

महारानी के राज में ही भारत की सर्वाङ्गीन उन्नति के द्वार खुले। रेल, तार, डाकखाने, हस्पताल, युनिवर्सिटी, कालिज और सैकड़ों मङ्गलकारी कार्यों का प्रबन्ध हुआ। इस देश की स्त्री-शिक्षा में फिर से जीवन-संचार हुआ। भारत के नगरों में ग्रामों में कन्या पाठशालाएं खुलीं। स्त्रियों को सुमाता और सुपत्नी बनने के लिये वे अपने जीवन का सुन्दर नमूना रख गई हैं।

६४ वर्ष तक बड़े प्रताप के साथ राज करके सन् १९०१ ई० के जनवरी महीने में उन्होंने परलोक गमन किया। उनके भी देहान्त के बाद उनके बड़े पुत्र सप्तम एडवर्ड सिंहासन पर बैठे। उन्होंने केवल ९ साल राज किया। अब उनके पुत्र अर्थात विक्टोरिया के पौत्र

जार्ज पञ्चम हमारे सर्व्वजन-प्रिय सम्राट बने हैं। जिनके राज तिलक का उत्सव दिल्ली में हुआ। इनके पहिले कभी कोई अङ्गरेज़ सम्राट का भारत में राजतिलक नहीं हुआ। महारानी विक्टोरिया के पुण्य-चरित्र का प्रभाव उनके वंशधारियों के जीवन में सदा के लिये प्रवाहित होता रहेगा। परमात्मा हमारे प्रजावत्सल सम्राट और साम्राज्ञी को चिरञ्जीवी करें॥

गोपा

बौद्ध धर्म्म के प्रवर्त्तक बुद्धदेव का नाम जगत में प्रसिद्ध है। हिन्दू शास्त्रों में इनको विष्णु का एक अवतार बताया है। महात्मा बुद्ध जैसे धार्म्मिक थे, उनकी सहधर्म्मिणी गोपादेवी भी वैसी ही विद्यावती और बुद्धिमती थीं। धर्म्म की किस प्रकार से रक्षा करनी चाहिये इस बात को भली भांति जानती थीं और सब कामों में बाहर के आडम्बरों का त्याग करके केवल सार विषयों का ग्रहण करतीं थीं। इसी कारण वे घूंघट से अपना मुंह कभी नहीं ढकती थीं। इस व्यवहार को देखकर बहुतेरी मूर्खा स्त्रियां उनकी निन्दा करने लगीं। कोई कहती, "यह बहू बड़ी

बेशरम है, कोई कहती इसे धर्म्म-ज्ञान नहीं।" ऐसी बातों को सुनकर गोपा ने इसका जवाब इस प्रकार से दियाः—"धर्म्मशील मनुष्य जिस अवस्था में रहते हैं, उसी में वह सुशोभित होते हैं। गुणवान मनुष्य यदि तृण के वस्त्र पहिने या सैकड़ों जोड़ लगी कन्था धारण करें या कुरूप भी हों तो भी वे अपने गुणों के प्रभाव से शोभायमान होते हैं। धर्म्म ही मनुष्य का आवरण है और धर्म्म ही मनुष्य की शोभा है। नाना अलङ्कारों से भूषित मनुष्य यदि पापाचारी हो तो उसकी शोभा नहीं रहती। जिस नारी के हृदय में पापवासना पूर्ण है बाहर के सुन्दर कपड़े और घूंघट से उसे क्या लाभ हो सकता है? वह तो 'पयो मुख विषकुम्भ' है अर्थात् मुंह में मीठा अमृत और भीतर बिष भरे घड़े के समान है। शारीरिक दोष जिसके संयम में हैं, इन्द्रियां जिसके वश में हैं, चित्तवृत्ति जिसकी निरुद्ध और जिसके मन में सन्तोष है, उसे घूंघट से मुख ढकने का क्या प्रयोजन है? जिनको लज्जा नहीं, मान नहीं, जिनका चित्त वश में नहीं, इन्द्रियां सब दुर्द्दमनीय हैं वे सहस्त्र आवरणों से ढकी रहने से भी सुरक्षिता नहीं हो सकतीं। जिसका चित्त अपने वश में है, पति में

जिसके प्राण हैं, वह यदि चन्द्र सूर्य्य की नाईं सब के सामने प्रकाशित हो तो उस में भी कुछ दोष नहीं। जो स्त्री आप अपनी रक्षा करती है, वही सुरक्षित है, नहीं तो घूंघट काढ़ कर घर में सैकड़ों पहरे दारों से भी सुरक्षिता नहीं रह सकती हैं। जब चरित्र ही मेरा दुर्भेद्य वस्त्र है, सारे सद्गुण मेरे अजेय दुर्ग हैं और धर्म्म मेरा रक्षक है तो कपड़े के घूंघट से मुझे क्या प्रयोजन है?" ऐसे ऐसे धर्म्म-पूर्ण तेजस्वी वचनों से गोपादेवी ने मूर्ख स्त्रियों का भ्रम निवारण किया। गोपा ने शेष जीवन में पति का धर्म्म ग्रहण करके ब्रह्मचारिणी बनकर कठोर बौद्ध-धर्म्म का साधन किया था॥

भगिनी डोरा

डोरथी विन्डलो पाटिसन ने इङ्गलैण्ड के यार्कशायर के अन्तर्गत हक्सले गांव में जन्म ग्रहण किया था। इनके बारह भाई बहिन थे। ये अपनी माता की नाईं सुन्दरी थीं। लड़कपन में यह बहुत ही दुर्बल थीं। इस लिए इनको बालकों की नाईं घोड़े पर चढ़ने को और शारीरिक

व्यायाम करने को इनके माता पिता सदा उत्साहित करते थे जिससे यह शीघ्र ही सबल और सुस्थकाया सुन्दरी नारी बनी। इन्होंने अपने गांव की एक पाठशाला में विद्यारम्भ किया। धर्म्मशील माता-पिता की शिक्षा और यत्न से बाल्यकाल में ही उनके कोमल चित्त में धर्म्म-भाव विकसित हुआ। जिसके प्रभाव से यौवनकाल में भी और साधारण स्त्रियों की नाईं उनका चित्त विवाह करके सुख भोग के लिये चंचल नहीं हुआ। किसी प्रकार सुखप्रियता या विलासवासना उनमें नहीं थी। वे एक पाठशाला में बालकों को शिक्षा देने के काम में लगीं। वृथा बैठ कर या साथी सहेलियों के साथ बातों में समय को खोना वह पसन्द नहीं करती थीं। विद्यावती स्त्रियां अपने जीवन को वृथा नष्ट करना पाप समझती हैं।

इस समय क्रिमिया के भीषण युद्ध में आहत सेनाओं की सेवा के लिए इङ्गलेण्डवासिनी कुमारी फ्लोरेन्स नाइटेङ्गेल के साथ और भी कई रमणी युद्ध क्षेत्र में जाने को तैय्यार हुई थी। यह समाचार सुनते ही डोरा भी उनके साथ परोपकार में जीवन दान करने को व्याकुल हुई। उन्होंने अपने

पिता से आज्ञा मांगी। परदेश में जाकर ऐसे कामों में लगने के लिये उनकी अवस्था बहुत छोटी थी, इस लिए पिता ने सम्मति न दी। पिता की आज्ञा बिना तो वे जा नहीं सकीं, परन्तु सेवाव्रत धारण करने को उनका चित्त बड़ा व्याकुल होने लगा। कालचक्र के परिवर्त्तन से उनको सुयोग भी मिल गया। उनके पिता परलोक सिधारे। तब डोरा ने अपने जीवन को परोपकार में लगाना ही स्वीकार किया। और इस लिए रोमन-कैथलिक धर्म्मवाली ब्रह्मचारिणियों के आश्रमभुक्त हुईं। वहां का नियम यह था कि जो नयी आती उसे शिक्षा देने के लिए वहां वाली बहुत ही नीच और कठोर काम देती। डोरा ने कुछ काल तो प्रसन्नता के साथ उनकी आज्ञा पालन की, परन्तु जब उसने देखा कि सदा दूसरे के आज्ञानुसार चलने में अपनी स्वाधीनता का ह्रास होता है और उससे जीवन की उन्नति नहीं होती, तब उसने वह आश्रम त्याग किया। वहां से आकर सेवा का काम अच्छी तरह सीखने को वे मेडिकल कालेज के सेवा-विभाग में दाखिल हुईं और थोड़े ही काल में सेवा के सारे नियम अच्छी तरह सीख लिए, जिससे उन्हें भविष्यत् जीवन में बड़ी सहायता मिली।

सेवा-परायणा डोरा की कामना पूरी होने के लिए उसे एक बड़ा अच्छा सुयोग मिला कि इस समय उस देश में वसन्त रोग बहुत फैलने लगा। हर रोज हजारों लोग इस भयकर रोग से मरने लगे। सारे हस्पताल रोगियों से भर गए। सेवा करने के लिये सेविकाओं का प्रयोजन हुआ। इस संवाद को सुनते ही डोरा हस्पताल में जाकर सेवा करने को तय्यार हुईं। सेवा करने की व्याकुलता देखकर वहां के डाक्टर ने उन्हें काम दिया। डोरा तन मन लगा कर प्रसन्न चित्त से रोगियों की सेवा करने लगी। दिन रात अविश्राम सेवा करते २ उन्हें भी वसन्त रोग हुआ। रोग से मुक्त होकर फिर सेवा में लगी। ऐसे प्रेम और यत्न से सेवा करने के कारण सारे रोगी उनको भक्ति की दृष्टि से देखने लगे। वह जिसके पास जातीं, वही उन्हें देखकर कृतज्ञता से धन्यवाद देता। स्नेहमयी माता जैसे अपने बच्चों की सेवा में दिन रात लगी रहती हैं डोरा उसी तरह प्रेम भरे हृदय से रोगियों की सेवा करती थीं। इसी कारण सारे रोगी उन्हें भगिनी अर्थात् बहिन पुकारते थे; और जगत में वे भगिनी डोरा के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

जिसके हृदय में पवित्र प्रेमकी धारा बहती है वह कभी बिना दूसरों को लाभ पहुंचाए तृप्त नहीं होता। वृक्ष भी दूसरे को फल फूल दान करके जीवन सफल करते हैं। नदियां दूसरों की तृष्णा निवारण करती हैं। साधु जन भी इसी प्रकार दूसरों के दुःख ताप को दूर करके तृप्त होते हैं। डोरा केवल रोगियों की सेवा ही नहीं करती थीं, किन्तु रात में घोर पाप में डूबते हुए नशे खोर मनुष्यों को उद्धार करने के लिये गलियों में और सड़कों पर फिरतीं। उन्हें सदुपदेश देकर सुपथगामी बनाने की चेष्टा करतीं। कहते हैं, कि कई नशेखोर मनुष्य इकट्ठे होकर आपस में बड़े अश्लील गन्दे बचन बोल रहे थे, जिससे उनकी कुवासना भी प्रकट होरही थी। इस अवसर में डोरा वहां आपहुंची। उसके दर्शन से वे लोग पहिले तो चुप हो गए फिर उनसे भी गन्दे बचन बोलने लगे। जैसे माता अपने कुपुत्र को सुधारने के लिए उसे प्यार से उपदेश देती और उसके मंगल के लिये परमात्मा से प्रार्थना करती है; उसी तरह डोरा ने भी उन मनुष्य रूपधारी पशुओं को बहुत समझाया, और उनको शुभमति देने को परमेश्वर से प्रार्थना करने लगी। प्रार्थना सुफल भी हुई। प्रार्थना के

बचन सुन कर अज्ञानियों के हृदय में ज्ञानका संचार हुआ और वे उनके चरणों मे गिर कर क्षमा भिक्षा करने लगे।

दिन में रोगियों की सेवा और रात में पापियों का उद्धार करते २ भगिनी डोरा का कुमारी जीवन व्यतीत होने लगा। परोपकार के लिये डोरा ने अपने जीवन को संसार के सुख भोग के मोह से मुक्त किया और चिरकाल ब्रह्मचारिणी बनकर स्वदेश बासियों की सेवा करती रही। भगिनी डोरा परोपकार करते २ इस लोक से स्वर्गधाम को चली गई। उनके मृतदेह के साथ लाखों नर नारी शोकातुर होकर कबरस्थान पर गए और अश्रुपूर्ण नयनों से उनके चरणों में भक्ति पुष्पाञ्जलि देकर उन्हें चिरकाल के लिए बिदा कियो। अभी तक उस नगर में उनकी धातुमय प्रतिमूर्त्ति विराज रही है॥

मैडम कुरी

पृथिवी की प्राचीन तथा अर्वाचीन काल की अनेकों विद्यावती, पतिव्रता, परोपकारिणी और वीराङ्गनाओं का वृत्तान्त हमने पाठ किया है। परन्तु विज्ञान की विद्या में कभी किसी स्त्री का नाम तक नहीं सुना था। आज कल हम लोग जो रेडियम् नामक अद्भुत पदार्थ का नाम सुनते हैं, वह एक प्रतिभाशालिनी नारी के ज्ञान और चेष्टा का फल है। आज हम इस विदुषी नारी के जीवन का कुछ वृत्तान्त अपनी देश बहिनों को सुनावेंगे। फ्रान्स की राजधानी पैरिस की विज्ञान सभा का कोई मेम्बर इस नारी के तुल्य नहीं है। इस विद्यावती का कुमारी अवस्था का नाम मेरी स्क्लाडोस्का था। यह रूस राज्य के अधीन पोलाराज की देश-वासिनी हैं। इनके पिता डोयार्सो युनिवर्सिटी में रसायन विद्या के अध्यापक थे। परन्तु इन्हें तनखाह बहुतही थोड़ी मिलती थी; उस से गृहस्थी का सारा खरच निर्वाह करनाही कठिन था। कुमारी मेरी पिता के रसायन के परीक्षागार में सहकारिणी का काम करने लगीं। इसके बाद इन्होंने विश्वविद्यालय के बहुत पाठ्य विषय पढ़े थे। मेरी

अपने देश की सेवा में जीवन उत्सर्ग करने के लिए और भी अधिक विद्या सीखने को व्याकुल हुईं। एक रूसी परिवार में अध्यापिका का काम लेकर ये उनके साथ दक्षिण यूरोप में गईं। वहां उन्हें जो तनखाह मिलती, उस में से बहुत सा हिस्सा बचा कर अपनी विद्योन्नति में खरच करती थीं। विद्या सीखने के लिए इन में ऐसा उत्साह था, कि बहुत समय भूखी रह कर भी पुस्तकें खरीदने में अपना रुपया खरच करके सुखी होती थीं। इस प्रकार से बहुत चेष्टा करके एक कालेज में प्रवेश किया। थोड़े ही समय में उन्हों ने वहां बहुत उन्नति कर ली। ऐसी आन्तरिक चेष्टा कभी छिपी नहीं रह सकती। उनके अध्यापक ने उन का ऐसा विद्यानुराग देख और रसायन शास्त्र में उन का अद्भुत ज्ञान देखकर उन्हें अपनी सहकारिणी बना लिया। कुछ काल एकत्र काम करने से अध्यापक के हृदय में इस दरिद्र नारी के प्रति प्रेम और गंभीर भक्ति का संचार हुआ। उन्होंने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव सुनते ही मेरी को बड़ी लज्जा हुई। वह उस नौकरी को त्याग कर पिता के पास अपने स्वदेश में चली गईं। वहां से उन्होंने

अध्यापक को लिखा, कि मैंने अपना जीवन स्वदेश और विज्ञान की सेवा में उत्सर्ग करने की इच्छा की है। विवाह करने से मेरी यह कामना पूरी न होवेगी। इस कारण विवाह करने में सम्मति नहीं। परन्तु अध्यापक ने प्रेमपूर्ण भाषा में लिखा कि विवाह होने से दोनों मिल कर विज्ञान चर्चा करके उसकी उन्नति साधन करेंगे और वे सदा उसकी सहायता करेंगे। ऐसा लिखने से मेरी स्क्लाडोस्का ने विवाह में सम्मति दे दी। और दो सप्ताह के बीच में विवाह भी हो गया।

विवाह के बाद पति पत्नी दोनों मिल कर एक निर्ज्जन स्थान में रह कर विज्ञान की चर्चा करने लगे। परन्तु रोज़ नौ माइल दूर से कालेज आने से बहुत समय नष्ट होता है, यह देख कर फिर वे शहर में आ कर रहने लगे। अध्यापक का नाम प्रोफ़ेसर कुरी था। इस कारण विवाह के बाद मेरी स्क्लाडोस्का का नाम भी बदल कर मैडम कुरी हुआ। विद्वान् पति को विद्यावती पत्नी मिलने से दोनों का उत्साह बहुत ही बढ़ गया। क्रम से विदुषी मैडम कुरी के ज्ञान की बात सब स्थानों में फैल गई। उन्हें उसी कालेज में पति की सहकारिणी की पदवी मिली। इसके पहिले

और किसी नारी को यह पदवी नहीं मिली थी। कई बरसों तक परिश्रम करते करते एक दिन १८९८ इसवो में उन्होंने अपने पति को एक अत्याश्चर्य्य जनक वस्तु दिखाई। जो कि उन्हें बोहेमिया के किसी खान में पिचब्लेण्ड नामक पदार्थ से मिला था। यह बहु मूल्य था, एक ग्राम का मूल्य ९०,००० रुपया है। इसका गुण यह है; कि अंधेरे में उज्वल दिखाई देता और किसी तरह से घटता नहीं। उत्ताप और प्रकाश दोनों इससे निकलते हैं। आज कल डाक्टर लोग इसकी सहायता से देह के आभ्यन्तरिक बहुत से गुप्त रोगों की चिकित्सा करते हैं। अध्यापक कुरी ने इस महा मूल्य द्रव्य के आविष्कार और परीक्षा में अपनी गुण-वती पत्नी की बहुत सहायता की थी। पति पत्नी परस्पर सहायता करें, तो कितनी उन्नति हो सकती है, इसका दृष्टान्त मैडम कुरी के जीवन से मिलता है।

जब रेडियम के गुण की कथा उन्होंने सर्व साधारण में प्रकाश की, तो उनकी प्रशंसा देश-देशान्तरों में फैल गई। इङ्गलेण्ड, स्वीडेन प्रभृति देश के विद्वानों ने उनका बड़ा सम्मान किया। लण्डन की रायल सोसाइटी से उन्हें सोने के तमगे, इनाम मिले। फ्रान्स के लोगों ने

अध्यापक कुरी का तो सम्मान करना स्वीकार किया, परन्तु उनकी विद्यावती पत्नी जिनके एकान्त अध्यवसाय और उद्यम से यह अपूर्व पदार्थ पृथिवी के लोगों को मिला, उनका गुण स्वीकार करने को सम्मत न हुए। इस कारण अध्यापक कुरी ने फ़्रान्स का सम्मान ग्रहण न किया। मैडम कुरी को डोसिरिस पुरस्कार ३६,००० रुपये मिले, जिससे उनकी पारिवारिक दरिद्रता दूर हुई। पैरिस की सोरबन युनिवर्सिटी ने उनकी वक्तृताएं शिक्षित मण्डली के लोगों को सुनाने के लिए प्रबन्ध किया।

मैडम कुरी जगद्विख्याता विदुषी नारी हैं, परन्तु उनकी रहन सहन और पोशाक ऐसी सीधी सादी है, कि जो उन्हें नहीं पहिचानते वे साधारण स्त्री ही समझते हैं। परन्तु उनके भीतर के गुण जितने प्रकाश होने लगे. उतनेही बड़े बड़े महाराजा सम्राट उनकी वक्तृता सुनने के लिए आने लगे। कुरी दम्पति बाहर की दिखावट बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। इस कारण राजाओं के सामने वक्तृता देने को भी राजी नहीं होते थे। परन्तु जब पारस्य के शाह वक्तृता सुनने को बड़ी उत्कण्ठा से पैरिस में आए, तो उन्हें सुनानी

ही पड़ी । कहते हैं कि रेडियम को एक कांच के पात्र में मेज के ऊपर रख कर वे वक्तृता करने लगे । उस में से अचानक इतनी रोशनी निकली, कि जिसे देख कर शाह बड़े डर गए, और उन्होंने मेज को एक दम उलट दिया । रेडियम भी नीचे गिर पड़ा । उसकी हानि से कुरी को बड़ा दुःख हुआ, और शाह भी बड़े लज्जित होकर अपनी महा मूल्य अंगुठियां मैडम कुरी को देने लगे । इतने में रेडियम मिल गया । उसकी कुछ हानि नहीं हुई देख कर सब कोई बड़े सुखी हुए । वक्तृता सुन कर और रेडियम के गुण देख कर शाह बड़े प्रसन्न होकर मैडम कुरी को बहु मूल्य भूषण देने को तैयार हुए, परन्तु जिस नारी को विद्या रूपी बहु मूल्य-वान रत्न मिला है, उसे झूठे भूषणों का कुछ लोभ नहीं रहता । मैडम कुरी ने भी विनय के साथ भूषण लेना अस्वीकार किया ।

कई बरस तक पति पत्नी दोनों मिल कर विज्ञान की चर्चा करते रहे । उनकी दो कन्या हुईं । सन् १९०६ में एक दिन उनके पति राजपथ से जाते समय एक गाड़ी के नीचे आ गए, जिस से उनकी मृत्यु हो गयी । इस समय उनकी उमर ५० बरस की भी पूरी न

थी। इस विपद् से उनकी गुणवती पत्नी को ही हानि न हुई, किन्तु सारे जगत को बड़ी हानि हुई। उनके मृत्यु से फ़्रान्स को तो बहुतही हानि हुई। कारण वे फ्रान्स के रहने वाले थे। परन्तु इस महा विपद में भी मैडम कुरी ने आश्चर्य्य धैर्य्य के साथ अपना कर्त्तव्य पालन किया। और अभी तक वे अकेली ही पति का काम आप कर रही हैं। आज कल उन्होंने एक और मूल्यवान पदार्थ आविष्कार किया है। जिस का गुण रेडियम से भी अधिक है। इस धातु का नाम पलोनियम रक्खा है। परन्तु यह धातु बहुतही थोड़ा उन्हें मिला है, और इसका अधिक संग्रह होना भी वर्तमान अवस्था में कठिन है। सोरवन में वे आज तक अपने पति की स्मृति रक्षा करने के लिए विज्ञान सम्बन्धी वक्तृता दे रही हैं। जिसे सुनने के लिए पैरिस के बहुत बड़े बड़े सम्भ्रान्त स्त्री पुरुष और पुर्तुगाल के राजा रानी भी आए थे।

आज कल रेडियम से जगत के लोगों का बहुत उपकार हो रहा है, जिस के लिए हम मैडम कुरी को ही धन्यवाद देवेंगे।

सारे दिन विज्ञान की चर्चा करके जब वे अपने निर्ज्जन गृह में लौटती हैं, तब अपनी दोनों कन्याओं

को देख कर उनका चित्त प्रेम से भर आता है। वे उन्हें अपनी जन्म भूमि पोलाण्ड के वीरों की कथा सुना कर उनके कोमल हृदय में स्वदेश के प्रेम का संचार करती हैं।

इस विद्यावती गुणवती नारी से केवल उन्हीं के देशवासियों का गौरव नहीं हुआ, वरन् जगत के सारे नारी समाज का गौरव बढ़ गया है। जो लोग कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों के तुल्य ज्ञान नहीं हो सकता, आज उनके भी भ्रम दूर हो गये।

फ्रान्स ने बड़ी कृतघ्नता प्रकाश की है, जिसके लिए सब उसकी निन्दा करेंगे, कि उसने अपनी ऐसी गुणवती नारी रत्न का सम्मान नहीं किया। तो भी वैज्ञानिकों की मण्डली में मैडम कुरी को सर्वोच्च गौरव प्राप्त हुआ है। उन्हें दो बार नोबल पुरस्कार मिला है, जो पहले किसी पुरुष को भी नहीं मिला॥

पतिव्रता शाण्डिली देवी

महाभारत में लिखा है कि पतिव्रता शाण्डिली मृत्यु के बाद जब स्वर्गलोक में गई, तब देवलोकवासिनी सुमना देवीने उनसे पूछा कि हे देवी! तुमने पृथिवी में रह कर ऐसा क्या पुण्य किया था कि जिसके प्रभाव से स्वर्ग में ऐसा उच्चासन मिला है? शाण्डिली देवी ने उसका धर्म्म और नीति पूर्ण उत्तर इस प्रकार से दिया था:—

"हे देवी! मैंने शिरो मुण्डन जटाधारण गेरुवे रङ्ग का कपड़ा या वल्कल पहिन कर स्वर्ग लाभ नहीं किया। मैंने कभी अपने पति को अहितकर या कठोर वचन नहीं कहे, मैं सर्वदा अप्रमत्त और पतिव्रता होकर देवता और पितृलोक की पूजा और सास ससुर की सेवा करती थी। मेरे मन में कभी कुटिल भाव नहीं हुआ, मैं कभी घर के बाहर के द्वार पर खड़ी हो कर किसी परपुरुष से बात चीत नहीं करती थी। क्या प्रगट में और क्या छिप कर कभी मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसमें हँसी हो। मेरे पति जब बाहर से घर में आते, तब मैं एक-चित होकर उनको आसन देती, और उनकी यथा नियम सेवा करती थी। जो खाने की वस्तु मेरे स्वामी को पसन्द

नहीं होती मैं भी वह वस्तु नहीं खाती। पुत्र कन्या प्रभृति परिवार के लोगों के जो जो कार्य्य आवश्यक होते, मैं प्रति दिन बड़े भोर ही उठकर वह सब काम कर लेती थी, और दूसरों से भी करवाती थी। मेरे स्वामी यदि किसी काम के लिये विदेश को जाते तो मैं केश सुधारना तथा और सब विलास सामग्री का व्यवहार शृङ्गार करना परित्याग करती और सदा संयत चित्त हो कर पति की मङ्गलकामना करती रहती थी। परिवार और कुटुम्ब के लोगों के प्रतिपालन के लिये उन्हें यथा-शक्ति कष्ट नहीं देती। किसी गुप्त बात को बाहर या दूसरे के निकट प्रकाश नहीं करती, अपने सारे घर को स्वच्छ और साफ-सुथरा रखती थी।"

जो नारी निष्कपट हृदय से अपना कर्त्तव्य पालन करती हैं, उसे निश्चय ही स्वर्ग लाभ होता है॥

रानी अहल्याबाई

अहल्याबाई इन्दौर के महाराजा हुलकर-मल्हारराव की पुत्रबधू थीं। उनके एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र तो धर्म्म-शीला माता के पुण्य नाम के लिये कलङ्क ही था। इस दुराचारी पुत्र के लिये माता को बहुत दुःख सहना पड़ा था, अन्त में उस पुत्र का भी नाशही हुआ। उसके पीछे एक मात्र कन्या भी विधवा होने के कारण पति के साथ चितारोहण करके पति की सहगामिनी हुई। माता ने कन्या को सती होने से बहुत रोका, परन्तु शोकातुरा कन्या ने माता की इस आज्ञा का पालन न किया, अन्त में माता ने धैर्य्य के साथ कन्या का सहमरण देखा।

बीस बरस की अवस्था में अहल्याबाई ने इन्दौर का राज्य भार ग्रहण किया था। अब मध्य भारत वर्ष में इन्दौर नगर जो महाराजा हुलकर की राजधानी है, अहल्याबाई का राज्य उसीके निकट था। आधुनिक इन्दौर नगर अहल्याबाई ने प्रथम बसाया था। महाराष्ट्र जाति की स्त्रियों में पर्दे की प्रथा नहीं। ईश्वर की कृपा से इस जाति में अभी तक इस कुरीति ने अधि-

कार नहीं किया। महाराष्ट्र जाति की स्त्रियां सास, ससुर, जेठ, ननदोई प्रभृति सब के साथ मुंह खोल कर स्वच्छ भाव से बोलती हैं। अहल्याबाई भी दरबार में राज-मन्त्रियों के सामने सिंहासन के ऊपर बैठ कर राज कार्य्य करती थीं। वह प्रातःकाल में उठकर ध्यान उपासना करके धर्म्म ग्रंथादि का पाठ सुनती थीं, पीछे व्रत नियमादि करके, दीन दरिद्रों को धन दान, अन्न दान करती थीं। फिर भोजन आदि से निबट कर श्वेत वस्त्र पहिन कर राजदरबार में बैठ कर दुपहर दो बजे से छः बजे तक राज कार्य्य करतीं। प्रजाओं की रक्षा और उनकी सुख-वृद्धि के लिये बड़ा यत्न करती थीं। प्रजाओं के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होती थीं। इसलिये प्रजाओं की प्रार्थनाएं स्वयं सुन कर विचार पूर्वक आज्ञा देती थीं। छः बजे तक राज कार्य्य समाप्त करके उसके पीछे आत्मोन्नति में लगती थीं। पुराण पाठ सुनने में उनका बड़ा अनुराग था। वह कहतीं कि भगवान के पास मुझे सारे कामों का हिसाब देना पड़ेगा, अतएव मैं अपना कोई काम उनकी आज्ञा के विरुद्ध नहीं करूंगी। वह सत्य का सम्मान करतीं, और खुशामदियों से बड़ी घृणा करती थीं। एक बार एक ब्राह्मण ने उनकी प्रशंसा

पूर्ण एक ग्रन्थ बनाया और वह ग्रन्थ उन्हें बड़ी आशा से भेंट किया। रानी ने पुस्तक को देखते ही नदी में फेंकवा दिया। अहल्याबाई जैसी ईश्वर परायणा धार्म्मिका नारी थीं, वैसीही राजनीति में भी बड़ी चतुर थीं। उसने राजकार्य्य में अच्छे अच्छे कर्म्मचारी नियुक्त किये। ३० बरस तक निर्विघ्न राज कार्य्य किया था। उसके समय राज्य में युद्ध विद्रोह प्रभृति अशान्ति नहीं थी। सब प्रजा सुख और शान्ति में वास करते थे। अहल्या ने बहुतेरे धर्म्म मन्दिर, दुर्ग और सुगम मार्ग बनवाये थे। वे केवल मनुष्यों का ही उपकार नहीं करती थीं, किन्तु पशु पक्षी और जलचर मछलियों के सुख के लिये भी उनके खाने पीने की व्यवस्था की थी। अपना गुरुतर कर्त्तव्य को धर्म्मानुसार पूरा करती हुई इस लोक से यश और सुख्याति के साथ रानी अहल्या परलोक को सिधारी॥

सेवा-परायणा निवेदिता

भगिनी निवेदिता आयर्लैण्ड-निवासी एक धर्म्माचार्य्य की कन्या थीं। इनका घरका नाम मार्गारेट नोबुल था।

पिता माता के जीवन के सुदृष्टान्त से ही पर-सेवा के भाव का इनमें सञ्चार हुआ था। बालपन में पिता माता से ही बालकों को प्रथम शिक्षा मिलती है, जिसका प्रभाव भविष्यत् में प्रकाशित होता है।

एक दिन एक भारत-प्रवासी धर्म्माचार्य्य इनके पितृगृह में अतिथि हुए। उनसे भारत के विषय में सुनकर बालिका नोबुल का कोमल चित्त भारतवर्ष देखने को व्याकुल हुआ। उसकी व्याकुलता देख कर वह अतिथि महाशय बोले, "यह कन्या भारत की सेविका बनेगी।" उनकी यह भविष्यत् वाणी सफल हुई। मार्गारेट नोबुल के पिता भी मृत्यु के समय अपनी पत्नी से कह गए, कि यदि कभी इस कन्या को भारत में जाने की इच्छा होवे, तो तुम इसे सहायता देना, रोकना नहीं। माता ने भी पति की आज्ञा पालन की।

मार्गारेट बड़ी बुद्धिमती थीं। ज्ञानोन्नति में उनका बड़ा उत्साह था। विद्यालाभ करके स्वजाति में ज्ञान विस्तार के लिए वे बड़ा यत्न करने लगीं।

इस समय परमहंस रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में वैदिक-धर्म्म का प्रचार करने को गये थे। उनकी तेजपूर्ण वक्तृताएं सुनकर नोबुल ने भारत की सेवा में जीवन दान करने का संकल्प किया, और ईसाई धर्म्म को त्याग कर वैदिक-धर्म्म ग्रहण करके भारत वर्ष में आईं।

तब से उनका नाम भगिनी निवेदिता हुआ। भारत में आकर यहां की स्त्रियों की दुर्गति देख वह बड़ी दुःखी हुईं। यहां की नारी समाज को उन्नत करने का संकल्प किया। परंतु एक विदेशवासिनी स्त्री के लिये यह काम बहुत ही कठिन था। उन्होंनें कलकत्ते में हिन्दुओं के मुहल्ले में एक घर किराये पर लिया, और हिन्दू नारी की नाईं रहने लगीं। पहिले तो कोई हिन्दू नौकर उन्हें नहीं मिला, और न किसी हिन्दू ने उनकी सहायता की। परन्तु वे ऐसी त्यागशीला नारी थीं कि उन्होंने अपना पहिला आचार व्यवहार सब त्याग दिया। फल मूल खाकर रहने लगीं। धर्म्म-जीवन का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि थोड़े ही काल में जो लोग उनसे घृणा करते थे, वेही सब उनके मित्र बन गए।

वे जिस मुहल्ले में रहती थीं, वह यद्यपि पक्के हिन्दुओं का वासस्थान था, परन्तु बहुत ही गन्दा था।

गली की मोरियों में से सदा दुर्गन्ध निकलती। हिन्दुओं को तो ऐसे विषय में कुछ भी परवाह नहीं थी। भगनी निवेदिता हिन्दुओं की नाईं केवल गंगा-स्नान करके शुद्ध नहीं रहतीं वरन् सारे मुहल्ले को शुद्ध करने के लिए यत्न करने लगीं। हिन्दू लोगों ने उनके इस प्रस्ताव को पसन्द न किया और कहने लगे, "हम चूढ़े हैं, कि मोरी और मुहल्ला साफ़ करेंगे?" निवेदिता हटनेवाली स्त्री नहीं थीं। दुर्गन्ध से सब के स्वास्थ्य की हानि होगी यों कह कर वे आप झाड़ू और पानी लेकर मुहल्ले की मोरियां साफ़ करने लगीं और सब स्त्री पुरुषों को सफाई के लाभ समझाये। उनके इस सुदृष्टान्त को देखकर फिर वहां के बाशिन्दे भी उनके साथ मोरी साफ़ करने लगे। थोड़े ही काल में वह मुहल्ला साफ़ सुथरा होकर वहाँ के निवासियों को आनन्द देने लगा।

इस समय कलकत्ते में बड़ा प्लेग फैला और सब लोग अपने अपने मुहल्ले और घरों की सफ़ाई करने लगे। निवेदिता सब को सहायता देती रहीं। प्लेग से पीड़ित बालकों की सेवा अपने हाथों से दिन रात करने लगीं। युवकों के साथ मिलकर उन्होंने एक सेवामण्डली बनाई कि असहाय अनाथों की सेवा और मुहल्लों की सफ़ाई

की जांचे। पाठिकागण, देखिए एक यूरोप की नारी के यत्न और उद्यम से हमारे देशवासियों को कैसा लाभ पहुंचा। क्या हम लोग इसका अनुकरण नहीं कर सकते? पंजाबी स्त्रियां तो सारे दिन गलियों में फिरती और बैठी रहती हैं, क्या कभी किसी ने इस प्रकार से अपनी जाति के उपकार में भी यत्न किया है?

सन् १९०७ में बंङ्गाल के बाकरगञ्ज ज़िले में बड़ा अकाल हुआ। वहां के प्रधान देशभक्त लोग दुःखी अनाथों को सहायता देने का यत्न करने लगे बहुत धन भी संग्रह हुआ। भगिनी निवेदिता दुःखियों को अन्न-दान और उनकी सेवा करने के लिए वहां गईं। बर्सात में बंगाले के बहुत से गांवों के रास्तों में पानी का स्रोत बहता है, उस समय वहां जाना आना बड़ा कठिन होता है। परन्तु ये सेवा-परायणा नारी प्रेम से भरपूर होकर ऐसे में भी जाकर रोगी दुःखी और अनाथों की सेवा करने लगीं। लोग उनकी देवी की नाईं भक्ति करने लगे।

वहां से लौट कर सारा वृत्तान्त (The Flood and Famine in East Bangal) नाम के एक बड़े चित्तरंजक प्रस्ताव द्वारा Modern Review संवाद-पत्र में लिखने लगीं। वे बड़ी सुलेखिका भी थीं। अंग्रेज़ी भाषा में तेज-

पूर्ण वक्तृता देकर और प्रस्ताव लिख कर भारतवासी समाज की उन्नति में उन्होंने बहुत कुछ सहायता की थी। ये भारतवर्ष के साधुओं और ज्ञानियों पर गम्भीर भक्ति और श्रद्धा करती थीं और सदा यह कहकर शोक प्रकाश करतीं, कि भारतवासी कैसे मोह की निद्रा में अज्ञान हो रहे हैं कि इनके देश में ऐसे ऐसे रत्न गौरव के लिये हैं, तो भी यह केवल परदेशियों के भरोसे रहते हैं। भारतवासी अध्यात्मिक गौरव में जगत में श्रेष्ठ होकर भी अज्ञानता के वश में पराधीन हो रहे हैं। भारत के लोग कब जाग कर अपना लुप्तरत्न पुनः लाभ करेंगे। भगिनी निवेदिता ज्ञान और प्रेम से शोभिता होकर भी अहंकृता नहीं थीं। सदा विनय और नम्रता के साथ सेवा व्रत को पालन करके नारी जन्म सफल करती थीं।

बङ्गाली विधवाओं के दुःखमय जीवन को देख कर उनकी उन्नति के लिए एक आश्रम बनाया और स्वयं उन्हें शिक्षा देती थीं। छोटे छोटे बालकों को किण्ड-र्गार्टन प्राणाली के अनुसार शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला भी खोली थी। उनका स्वभाव ऐसा कोमल और मधुर था, कि जो उन्हें देखता वही मुग्ध हो जाता।

निवेदिता ने हिन्दू-धर्म्म ग्रहण करके अपने सारे तनमन को भारत की सेवा में लाया था। उनके इस दृष्टान्त को देख कर बहुत अंग्रेज़ नर नारी उनको घृणा की दृष्टि से देखा करते थे।

वे कहतीं कि हिन्दुओं में पति अपनी स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार करते हैं, वह सभ्यता के विरुद्ध है। स्त्री पति के धर्म्म-पथ में साधन हैं, दासी नहीं। हिन्दू स्त्रियों के पारिवारिक जीवन की दुर्गति देख कर भी बड़ा दुःख प्रकाश करतीं, और पुरुषों को अपनी स्त्रियों की उन्नति में सहायता देने को उत्साह देतीं और कहतीं कि स्त्रियों के दुःख का नाश करना और उन्हें ज्ञानवती और विदुषी बनाकर मनुष्य पद के योग्य बनाना पुरुषों का कर्त्तव्य है।

वे भारत की सेवा करते करते अचानक रोग युक्त हो कर दार्जिलिङ्ग पहाड़ पर परलोक सिधारीं।

चिरकुमारी रहकर उन्होंने ज्ञान और प्रेम के बल से जिस तरह तन मन दे कर भारत की सेवा की थी, वह प्रत्येक भारत नारी के अनुकरण करने के योग्य है। लन्डन में सर्व जाति की उन्नति साधिनी जो महासभा हुई थी, उसमें भी भगिनी निवेदिता ने भारतवासियों

की उन्नति की सहायता के लिए प्रबन्ध लिखकर भेजा था जिस में भारत के प्रति उनका सुदृढ़ प्रेम प्रकाश हो रहा था। धन्य है वह नारी! जिस ने अपने जीवन को परोपकार में दान किया है। अपने सुख को त्याग कर दूसरों के लिए जीवन देना ही स्वर्ग-लाभ का एक मात्र उपाय है॥

शैव्या

शैव्या राजा हरिश्चन्द्र की महारानी थीं। राजा हरिश्चन्द्र बड़े सत्यपरायण और दानशील थे। उनके यश को सुन महामुनि विश्वामित्र वहां आये, और राजा की सत्यनिष्ठा की परीक्षा करने के अभिप्राय से छल करके बोले, "हे महाराज! मैं आपके यश को सुनकर आया हूं" इत्यादि। तब राजा ने मुनि को सारा राज्य दान किया और उसके साथ दक्षिणा भी देने की प्रतिज्ञा की। मुनि ने प्रथम तो राज्य-ग्रहण किया और फिर राजा को राज्य से निकाल दिया। राजा अपनी सत्य-रक्षा के लिये अपनी रानी से बोले, "हे देवि! मेरे साथ रहने से तुम्हे बहुत दुःख मिलेगा, अतएव तुम पुत्र को साथ ले अपने पितृगृह में जाकर

सुख से वास करो।" पतिप्राणा सती ने पति का यह बचन सुनते ही कहा, "हे स्वामिन्! मैं तुम्हें छोड़कर स्वर्ग में भी सुख नहीं पाऊंगी; तुम मुझे अपने साथ ले चलो। मैं तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारी सेवा करूंगी।" यह कह कर रानी अपने सारे वस्त्र अलङ्कार त्याग कर एक सामान्य स्त्री की नाईं वस्त्र धारण कर पति के साथ चलने को तैयार हो गईं। राजा रानी पुत्र के साथ काशी धाम में गए। राजा के निकट एक कौड़ी भी न थी। मुनि को दक्षिणा कहां से दें—इसी चिन्ता से धार्म्मिक राजा बड़े व्याकुल हुए। पति को व्याकुल देख सती शैव्या बोली, "हे नाथ तुम क्यों शोच करते हो हाट के दिन मुझे बाज़ार में* बेचकर मुनि को दक्षिणा दो।" क्या करते, और कोई उपाय न देख राजा दुःखित मन से प्राणों से प्रिया रानी को बेचने को बाजार में ले चले। एक ब्राह्मण को दासी की ज़रूरत थी। उसने शैव्या को सुलक्षणा और गुणवती देख उसे मोल ले लिया। उसके साथ उसका पुत्र भी गया। राजा ने रानी को बेच कर जो रुपये मिले वे मुनि को दिये। परन्तु

*प्राचीन युगों में स्त्रियों को बेचने, गिरवी रखने तथा दान करने की कुप्रथा प्रचलित थी।

वे उससे भी दक्षिणा का सारा ऋण न दे सके। तब राजा ने अपने को एक चाण्डाल के हाथ बेचकर मुनि को पूरी दक्षिणा दे दी। रानी तो ब्राह्मण के घर रह कर दासी का काम करने लगीं और राजा अपने मोल लेने वाले प्रभु के शूकर चराने में नियुक्त हुए। धर्म्म के लिए राजा रानी ने सर्व सुख त्याग दिये और पराये गृह में दास दासी बने। आहा! सती नारी का प्रेम कैसा गम्भीर, पवित्र भाव से पूर्ण होता है! शैव्या का पुत्र एक दिन बाग में ब्राह्मण की पूजा के लिये फूल चुन रहा था कि इतने में एक विषधर सर्प ने उसे काट लिया। बालक सांप के विष से वहां ही अचेत होकर गिर पड़ा।

पुत्र को बड़ी बेर तक न आया देख स्नेहमयी माता बाग़ में आई। हाय! प्राणप्रिय पुत्र को वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ देखते ही माता का हृदय विदीर्ण हो गया। माता ने पुत्र को गोद में उठा लिया और दाह के निमित्त उसे श्मशान में ले गयी। वहां चिता बना मृतपुत्र को गोद में धारण कर पति को याद कर विलाप करने लगी। परमेश्वर की अपार करुणा से राजा भी सुअर चराता हुआ वहां आ पहुंचा। पति पत्नी ने

एक दूसरे को पहिचाना, और वे पुत्र के लिये विलाप करने लगे, कि उस अवसर में एक दयाशील साधु वहां आया और कुछ औषध दे कर उनके पुत्र को जीवित किया। पुत्र को जीवित देख पिता माता बड़े कृतज्ञ होकर प्राणदाता की वन्दना करने लगे। इधर विश्वामित्र मुनि वहां आ पहुंचे और राजा की सत्यपरायणता की प्रशंसा करके राज्य लौटा दिया। राजा अपने और रानी के प्रभु को बहुत धन देकर मुक्ति लाभ कर राज्य में आया और वहां पुत्र को राज्य समर्पण कर रानी के साथ वानप्रस्थ अवलम्बन कर ईश्वराराधना में जीवन व्यतीत किया। आज तक समग्र भारत में राजा हरिश्चन्द्र की दानशीलता और सत्यपरायणता विख्यात है। काशी धाम में मणिकर्णिका का घाट अभी तक राजा हरिश्चन्द्र और सती शैव्या की स्मृति को प्रकाश कर रहा है॥

मैत्रेयी

मैत्रेयी देवी ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्म्मपत्नी थीं। जब याज्ञवल्क्य ऋषि संसार को असार जान कर, गृहस्थ आश्रम को त्याग कर, सब धनों के सार धन परमात्मा को लाभ करने के लिये बन में जाने को उद्यत हुए, तब उन्होंने अपनी धर्म्मपत्नी से कहा, "मैं तो संसार को त्याग बन में जाना चाहता हूं, सो मेरा जो धन और सम्पत्ति है, उसे तुम लोग आपस में बांट कर सुख से संसार में वास करो।" बुद्धिमती मैत्रेयी पति का यह बचन सुनते ही विनीत भाव से कर जोड़ कर बोली—"हे महर्षि! मैं इस असार धन-सम्पत्ति को लेकर क्या करूंगी जो मृत्यु के हाथ से मेरी रक्षा नहीं कर सकती? मुझे तो आप दया करके वही परम-धन दान करो जिसके लोभ से आप संसार-त्यागी हो रहे हो।" धर्म्मशीला सहधर्म्मिणी के ये ज्ञानपूर्ण वचन सुनकर ऋषि ने उन्हें ब्रह्मज्ञान विषयक उपदेश दिया। और इसके पीछे सारा धन कङ्गालों को और कुटुम्बियों को दान करके पति पत्नी ने धर्म्म साधन के लिये वनगमन किया। वहां प्रकृति की मनोहर शोभा देखते हुए

बहुत आनन्द लाभ करते करते वे दोनों परमात्मा के ध्यान में मग्न हुए ॥

कौशल्या

कौशल्या देवी सत्यव्रत रामचन्द्र जी की गर्भ-धारिणी माता और आयोध्या के महाराज दशरथ की जेठी महारानी थीं। यह कैसी धर्म्मपरायणा कर्त्तव्यपरायणा सती नारी थीं, उसका परिचय रामायण पढ़ने से मिलता है। जिनके पुत्र रामचन्द्र जी अपने देवस्वभाव के बल से अद्यावधि भारतवासी नर-नारियों के हृदय में भक्ति और प्रीति लाभ करते हैं, वे रमणी सामान्य नारी नहीं थीं। माता की शिक्षा और प्रभाव से ही रामचन्द्र जी ऐसे धर्म्मव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, बने थे। ऐसी गुणवती देवी का गुण हमलोगों को सदा स्मरण रखना उचित है, इस कारण रामायण से वह अंश जिसमें इन्होंने अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र और प्रियतमा पुत्रवधू सीता देवी को वनगमन के समय उपदेश दिया था, यहाँ उद्धृत किया जाता है। इन वाक्यों में कौशल्या देवी की गम्भीर धर्म्मनिष्ठा, अटल पतिभक्ति और

निस्वार्थभाव उज्जल रूप से प्रकाशित हो रहा है। इसमें कौशल्या देवी के चरित्र का गौरव हमारे हृदय में उनके प्रति भक्ति उत्पन्न कर रहा है।

"सरल स्वभाव राम महतारी।
बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउं बलि कीन्हेंउ नीका।
पितु आयसु सब धर्मक टीका॥

राज दीन कह दीन्ह बन, मोहि न दुःख लवलेश।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश॥

जो केवल पितु आयसु ताता।
तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु मातु कहेउ बन जाना।
तौ कानन शत अवध समाना॥
पितु बन देव मातु बन देवी।
खग मृग चरण सरोरुह सेवी॥
अंतहु उचित नृपहिं बनबासू।
बन बिलोकि हिय होत हरासू॥"

आहा क्या अद्भुत पुत्र-स्नेह से भरा हुआ माता का उपदेश है जिसमें द्वेष और रोष का लेश मात्र भी नहीं है। धर्म्मपरायणा माता के पुत्र भी वैसेही शक्ति-

शाली और दृढ़-प्रतिज्ञ होते हैं जैसे कि रामचन्द्र और लक्ष्मण जो हुए थे जिन्होंने राज-सिंहासन से भी वनवास को सुखदायी जान उसे ही ग्रहण किया। कौशल्या का पुत्रस्नेह जैसा असीम है, पतिभक्ति उससे भी अधिक गम्भीर और अटल प्रतीत होती है। दशरथ राजा के अन्तिम समय में कौशल्या ने ही उनके पास रहकर भक्ति और प्रेम से पूर्ण हृदय के साथ उनकी सेवा की, अपने हृदय की शोक यन्त्रणा को धैर्य्य के साथ दबा कर पति को सान्त्वना देती रहीं। वह मनुष्य धन्य है, जिसको ऐसी प्राण-स्वरूपा नारी मिली हो। भरत के प्रति भी उनका कैसा असीम मातृस्नेह था। भरत के दुःख में वह दुःखित हो जाती थीं। प्रजावत्सल राजमाता असंख्य प्रजाओं को भी अपने दुःख के साथी जान उनको उस समय धैर्य्य दे रही थीं। प्राचीन युगों में भारतवासी प्रजा भी राजा रानी के सन्तानवत् थे। एक दूसरे के साथ सहानुभूति और प्रेम भी अगाध था। धन्य हैं कौशल्या देवी, जिन्होंने धर्म्म के कारण प्राणों से भी प्यारे पुत्र और पुत्र-बधू को बनवास जाने से मना नहीं किया। वर्त्तमान युग में तो ऐसा दृष्टान्त स्वप्नवत् प्रतीत होता है। वृद्धावस्था तक कौशल्या देवी ने पुत्रों और प्रजाओं के

प्रति अपनी कर्त्तव्य पालन कर जीवन लीला संमाप्त की। दशरथ राजा ने भी प्रशंसा करके कहा था कि, देवी कौशल्या मेरी सखी मन्त्रिणी सहधर्म्मिणी सेविका और माता के समान हैं। वे अति बुद्धिमती, दानशीला और सदा धर्म्मपालन में तत्पर रहती थीं। उनकी स्नेह छाया में रहकर दीन दुखियों को भी सुख और शान्ति लाभ होती थी॥

मनिका

लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष व्यतीत हुए सेण्ट अगस्तिन की माता मनिका देवी ने अफ्रीका खण्ड के किसी नगर में सन् १७२ ईसवी में जन्म लियाँ था। इनके पिता माता धर्म्म परायण और भद्रवंशीय थे। जब ये छोटी थीं, तब एक दासी को इनकी रक्षा और शिक्षा का भार दिया गया था। वह दासी भी बड़ी धर्म्म-परायणा और शान्त स्वभाव वाली थी। उसके सद्दृष्टान्त और उपदेश से बालकपन से ही मनिका के कोमल हृदय में धर्म्म का बीज बोया गया था। जब कभी बाल-स्वभाव के कारण वह कोई निषिद्ध कर्म्म करने को जाती, तब वह

धार्मिको दासी उसको वह काम करने से मना करती, और उसको कर्त्तव्य-परायणा होने का उपदेश देती। इस दासी के गुण से मनिका वयोवृद्धि के साथ साथ धार्म्मिका और कर्त्तव्य-परायणा होने लगी। यह देख कर उसके पिता माता को भी बड़ा आनन्द होता था। धर्म्म के प्रति मनिका की प्रीति और विश्वास दिन पर दिन बढ़ने लगा; युवावस्था में तागस्ता नगर निवासी एक युवा पुरुष के साथ इनका विवाह हुआ। दुःख का विषय है, कि मनिका के पति का स्वभाव अच्छा नहीं था। परन्तु मनिका आश्चर्य्य सहिष्णुता, नम्रता, सप्रेम व्यवहार और मधुर बचनों से कुपथगामी पति को सर्वदा सुपथ में लाने की चेष्टा करती थी। उसके जगद्विख्यात पुत्र सेण्ट अगस्तिन ने उसके जीवन-चरित्र में लिखा है कि उन्होंने अपनी माता के मुंह से कभी कठोर बचन नहीं सुनें।

पड़ोस की स्त्रियां मनिका के निकट आकर अपने सास ससुर और पति की निन्दा करके अपने अपने भाग्य को खोटा कहतीं, और मनिका को सौभाग्यवती कह कर प्रशंसा करती थीं; परन्तु मनिका कभी किसी से अपने पति की निन्दा नहीं करती। अपना दुःख

भी किसीको नहीं बताती, सर्वदा प्रसन्न और पवित्र चित्त रहती। इस कारण कोई भी उसके दुःख को नहीं जानता था। वह अपने पास बैठनेवाली स्त्रियों को हमेशा स्नेहभाव से अच्छे उपदेश देती और कहती, "बहिनो! तुम लोग पहिले अपनी जिह्वा को उचित रीति पर लाने का अभ्यास करो तो फिर तुम्हें कोई दुःख नहीं देगा। कड़े शब्दों से कभी तुम कुपथगामी मनुष्यों को सुपथ में नहीं ला सकोगी, प्रेम-भाव और परमेश्वर के प्रति उसके मङ्गल के लिये प्रार्थना के द्वारा ही तुम उन्हें सुधार सकोगी। वह केवल मुंह से ही उपदेश नहीं देती किन्तु अपने जीवन में उनका दृष्टान्त भी दिखाती थी। उसके चरित्र-लेखक ने लिखा है कि मनिका साधुता, विनय और धर्म्मनिष्ठा के गुणों से अपने पति और परिवार के प्रति गम्भीर श्रद्धा की पात्र हुई थी। उसके सुन्दर धर्म्मभाव और पवित्र चरित्र को देखकर उसकी कर्कशा सास ने भी पीछे उसके धर्म्म में दीक्षा ग्रहण की थी। और उनके पति ने भी सारे कुकर्म्मों को त्याग करके धर्म्म का आश्रय ग्रहण किया था।

मनिका के दो पुत्र और एक कन्या हुई थी। उनमें से एक पुत्र जिसका नाम अगस्तिन था, संसार में साधु अगस्तिन के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ है।

इस समय उस देश के लोगों में न्याय और साहित्य शास्त्र की चर्चा बहुत होती थी। इस कारण जो लोग इन शास्त्रों में निपुण होते थे, वे पण्डित गिने जाते और उच्चपद को लाभ करते थे। अगस्तिन के पिता माता ने अपने प्यारे पुत्र को उन दोनों शास्त्रों में निपुण करने के लिए कार्थेज नगर में भेज दिया था। यौवन का आरम्भ, ज्ञान का अहङ्कार, और पास कोई उपदेश देने वाला अर्थात् शासनकर्त्ता न था। इसलिए कार्थेज नगर में अगस्तिन नाना प्रकार के पाप-कर्म्मों में फंस गया और फिर नास्तिक बना। उसी समय उसके पिता की मृत्यु हुई।

विधवा अनाथिनी मनिका देवी अकेली ही युवावस्था में मत्त पुत्र के कल्याण में नियुक्त हुई। सन्तान को कुकर्म में निमग्न देख कर पवित्र स्वभाववाली धार्म्मिका माता का हृदय विदीर्ण होने लगा। माता ने पुत्र का हाथ पकड़ कर रोती रोती पुत्र को बहुत समझाया कि "हे मेरे प्रिय पुत्र! तूने बड़ी बिपद् का रास्ता पकड़ा है।" कुछ काल तक तो मनिका के सब यत्न वृथा हुए। मनिका ने दुष्ट पुत्र के कल्याण के हेतु एकत्र खाना पीना और रहना तक छोड़ दिया।

परन्तु उससे भी कोई लाभ न देख दीन दुखियों के एकमात्र शान्तिदाता परमेश्वर के निकट पुत्र के लिए प्रार्थना करना ही एकमात्र उपाय अवलम्बन किया।

मनिका प्रतिदिन मन्दिर में जाकर कुछ देर तक पुत्र के लिए प्रार्थना करती। पूजा के दिन धर्म्मगुरु से पुत्र के लिए विशेष भाव से प्रार्थना करने की प्रार्थना करती। दो चार दिन तो गुरु ने उसका कहा माना, परन्तु प्रतिदिन के कहने से किञ्चित् विरक्तभाव के साथ बोले, "हे देवि! तू घर जा, जिस पुत्र के लिये तू इतने अश्रु प्रभु के चरणों में गिराती है, वह पुत्र कभी एकबारगी न डूबेगा।" मनिका भी उचित जवाब पाकर लौट आई। जब कार्थेज में अगस्तिन ने सब विद्या सीख ली, तब रोम नगर में जाकर अध्यापकता करने का संकल्प किया। रोम नगर उस समय पृथिवी में एक प्रधान नगर था, वहां युवा पुरुषों के कुपथ-गामी होने का और भी भय था। जब मनिका ने सुना कि उसका पुत्र रोम में जायगा, तब तो उसका हृदय और भी अधिक कातर हुआ। माता ने अश्रु-पूर्ण नयनों से प्राणसम पुत्र को रोम न जाने के हेतु बहुत मना किया। परन्तु दुराचारी पुत्र ने माता की

आज्ञा न मांगी। फिर माता भी पुत्र के साथ जाने को तैयार हुई। अगस्तिन यह बात मान कर माता को समुद्रतट तक साथ ले गया। किन्तु रात्रि काल में ही अभागिनी माता को वहां अकेली छोड़ कर वह दुराचारी और निठुर पुत्र आप जहाज़ में चढ़ कर चल दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब माता ने देखा कि पुत्र चला गया, तब वह बड़ा बिलाप करने लगी। परन्तु परमेश्वर की कृपा और धाम्मिका माता की प्रार्थना के बल से थोड़े काल बीतते ही वह कुपुत्र सुधर गया। माता बड़े क्लेश सह कर पुत्र के पास गई। पुत्र ने माता के चरणों में पड़ कर क्षमा भिक्षा की प्रार्थना की और सब पाप कर्म्म त्याग करके धर्म्म जीवन लाभ किया। खोये हुए पुत्र को फिर पा करके माता का हृदय आनन्द और कृतज्ञता से भर आया। माता ने पुत्र को छाती से लगा लिया और माता पुत्र दोनों भगवान के चरणों को कृतज्ञता के अश्रुओं से सींचने लगे। क्रम से पुत्र का जीवन शुद्ध हुआ और फिर उसे अगस्तिन धर्म्मगुरु का पद मिला। धन्य है, वह पुत्र जिसने ऐसी धार्म्मिका माता के गर्भ से जन्म लिया। ऐसी सुमाता का पुत्र यदि धर्म गुरु की पदवी का न पाता तो और कौन पाता॥

भगवती देवी

भगवती देवी बङ्गाल के निवासी सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की माता थीं। यह बड़ी दयाशीला और धर्म्मप्राणा थीं। इनके पुत्र ईश्वरचन्द्र भी बड़े मातृभक्त सन्तान थे। इन्होंने बाल्यकाल में बड़े कष्ट और दुःख दरिद्रता के साथ रह कर विद्या प्राप्त की थी। परन्तु अपनी चेष्टा और यत्न से यह बड़े भारी विद्वान हुए। इन्होंने संस्कृत और बङ्गला वर्णमाला से लेकर कालेज की पाठ्यपुस्तकों तक की रचना की थी। विविध शास्त्रों में जिस समय यह विद्वान हुए उस समय इनकी माता ने एक दिन बाल विधवाओं के दुःख से कातर हो पुत्र से कहा, "हे पुत्र ! तू तो विद्या पढ़ कर विद्या का सागर बना, परन्तु बता तो हिन्दू शास्त्रों में क्या चिरदुःखिनी विधवाओं का दुःख नाश करने का कोई उपाय नहीं? जिन शास्त्रों में दुःखी के दुःख दूर करने का उपाय नहीं ऐसे शास्त्रों को रख कर क्या लाभ है?" विद्या सागर माता का यह वचन सुनते ही उठ कर उनके चरणों में हाथ लगा कर बोले, "माता जी आपके चरणों के प्रभाव से मैं निश्चय ही दुःखिनी हिन्दू

बाल-विधवाओं के दुःख को नाश करने का उपाय शास्त्र-सिन्धु मथन कर निकालूंगा।" यह सुनतेही माता ने आनन्द से पुत्र को आशीर्वाद दिया, और विद्यासागर भी शास्त्रों में विधवाओं के पुनर्विवाह की सम्मति ढूंढ़ने लगे। दिन रात ढूंढ़ते ढूंढ़ते पराशर संहिता में उनको विधवाओं के दुःखहरण के उपाय स्वरूप वचन मिले, जिन्हें देखते ही विद्यासागर आनन्द से विह्वल हो माता के निकट आये, और सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। उन्हीं वचनों के अवलम्ब पर उन्होंने विधवा विवाह के पक्ष में ग्रन्थ रच कर प्रकाश किये। इन ग्रन्थों के प्रचार से बङ्गदेश में आन्दोलन आरम्भ हुआ। सारे हिन्दू लोग उनके विरुद्ध होकर भांति भांति की अश्लील भाषा में उनकी निन्दा करने लगे। विद्यासागर महावीर पुरुष थे। वे ऐसे हिन्दुओं की बातों से भयभीत नहीं हुए। केवल ग्रन्थ रचना ही नहीं की किन्तु अपनी चेष्टा और उद्योग से हिन्दूशास्त्र के अनुसार कई बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह भी कराये और उनका सारा व्यय स्वयही सहन किया। जब सब आत्मीय और स्वजाति के लोग उनके शत्रु बने, तब केवल माता ही पुत्र को उत्साह देती रही। माता के स्नेह पूर्ण मधुर वचनों ने पुत्र के

हृदय में असीम शक्ति का सञ्चार किया और इसी महो-पकारी कार्य्य से विद्यासागर का नाम भारत में चिर-स्मरणीय हुआ। माता की दया और दृढ़ता पुत्र ने भी लाभ की थी। ऐसे सुपुत्र को गर्भ में धारण करके भगवती देवी आदर्श-जननी बनीं॥

रानी मोरियापिया।

पुर्तुगाल की रानी मोरियापिया सारे यूरोप में बस्त्रालंकार से धनी थीं। सब से अधिक मूल्यवान रत्न इन्हीं के पास थे। तो भी ये कभी अहंकार नहीं करतीं। दया और परोपकार के लिए विख्यात थीं। परोपकार के लिए पुर्त्तुगाल में जितनी सभा हैं उन सबों में धनदान करतीं और स्वयं उनमें जातीं। ये घोड़े की सवारी और पानी के तैरने में बड़ी निपुण थीं। एक बार दो बालक समुद्र के तट पर खेलते खेलते पानी में गिर पड़े, इतने में रानी ने उन्हें जल-मग्न होते देख कर उसी क्षण समुद्र में लम्फ दिया और बड़े साहस और यत्न से दोनों बालकों को डूबने से बचा लिया। ये बड़ी कर्तव्य-परायणा और गृह-कर्म्म

में भी बड़ी निपुण थीं। सती स्त्रियां ही लक्ष्मीस्वरूपा होकर संसार को सुख और शान्ति से पूर्ण करती हैं॥

सती

सती राजा दक्ष की कन्या और महादेव जी की सहधर्म्मिणी थीं। दक्ष राजा ने एक महायज्ञ किया था। जिस में देश विदेश के सब राजा, प्रजा, मुनि, ऋषि और देवताओं का निमंत्रण किया था। केवल अपनी कन्या सती को और जमाई महादेव जी को नहीं बुलाया। सती ने नारद जी से यज्ञ-वार्त्ता सुन कर पिता के घर यज्ञ देखने के लिये जाने को बड़ी व्याकुल होकर अपने पति के निकट आकर आज्ञा मांगी। बिना निमन्त्रण जाना ठीक नहीं, इस कारण महादेव जी ने जाने को उन्हें बहुत मना किया। परन्तु सती पति की इच्छा के बिना ही पितृगृह को चली गयीं। जब ये वहां पहुंचीं, उस समय इनका किसी ने आदर नहीं किया, पिता ने तो इस की बात तक न पूछी। वरन् आदर के बदले सती को देखते ही उनके पति की निन्दा करने लगा। पिता के

मुख से पति की निन्दा सुनते ही सती के हृदय में क्रोधाग्नि जलने लगी। सती ने क्रुद्ध होकर पिता से कहा, "हे पिता! तुम जो मेरे धर्म्मरक्षक पति की निन्दा करते हो, यह अच्छा नहीं करते हो। इससे केवल तुम्हीं को पाप नहीं हुआ, वरन् तुम से जो मेरा यह शरीर उत्पन्न हुआ है, यह भी अपवित्र हो गया। मैं इसी क्षण इस अपवित्र देह को त्याग करूंगी। तुम मेरे पति को दरिद्र जानकर अपमान करते हो, पर मेरे पति ने जिस परमधन को लाभ किया है, उसकी तुलना में तुम्हारा धन अति तुच्छ है।" पिता से इस प्रकार कहती हुई पतिप्राणा सती ने उसी यज्ञशाला में बैठ कर योगबल से अपने देह को त्याग किया। पवित्र प्रेम के बल से सती पति की आत्मा के साथ मिल गई। जब महादेव जी को यह दारुण संवाद मिला, तो वे तुरन्त वहां आये, और अपनी पतिप्राणा सती को इस अवस्था में देख कर शोक में निमग्न हुए। फिर शान्ति हो कर सती की देह को अपने स्कन्ध पर धारण करके सारे भारत में फिरने लगे। कहा जता है कि उसी सती के देहांश भारत के जिन जिन स्थानों में गिरे थे, वहीं वहीं आज तक पुण्य तीर्थ स्थान बने हैं, और

सहस्त्रों यशस्त्री लोग सती के पुण्य चरित्र को स्मरण करके भक्ति पुष्पाञ्जलि देते हैं॥

कर्णिलिया

प्राचीन रोम नगर में कर्णिलिया नाम की एक बड़ी गुणवती साध्वी स्त्री रहती थी। एक दिन उसके घर पड़ोस की एक धनाढ्य नारी बहुत वस्त्र अलङ्कारों से विभूषित होकर आई। साथ में मणि-मुक्ताओं से भरा हुआ एक छोटा सा डिब्बा भी था। कर्णिलिया को देखते ही बोली—"बहिन जी! क्या तुम्हारे पास कोई अच्छा वस्त्र या गहना नहीं है? तुमने कोई आभूषण भी अच्छा नहीं पहिना?" यह कह कर उसने अहंकार के साथ अपना सारा भूषण और बहुमूल्य मणिमुक्ताओं का भरा डिब्बा खोल कर दिखाया। गुणवती कर्णिलिया तनिक हँस कर अपने दोनों सुपुत्रों को दिखा कर विनीत भाव से बोली—"बहिन जी! मैं झूठे वस्त्र अल-ङ्कारों को क्या करूंगी? परमेश्वर ने मुझे यही दो अमूल्य रत्न दान किये हैं, मैं इन्हीं से परम सुखी हूं।" उसके मधुर बचनों को सुनते ही वह गर्व्विता रमणी

लज्जित होकर बोलीं:—"तुम धन्य हो, जिनके ऐसे परम सुन्दर रूप-गुण-युक्त पुत्र हैं।" फिर कर्णिलिया से पुत्रों की शिक्षा के विषय पर उपदेश लाभ करके, उस दिन से वृथा गर्व्व को त्याग उसने भी अपने सन्तानों की शिक्षा में चित्त लगाया। सुनते हैं, कि कर्णिलिया के इन्हीं दोनों पुत्रों ने भावी जीवन में बड़े योद्धा, बीर और गुणशाली बनकर स्वदेश का गौरव बढ़ाया था। जिस दिन हमारे देश की बहिनें भी असार भूषणों की माया त्याग कर अपने सन्तानों की सुशिक्षा में ध्यान देंगी; उसी दिन भारत का शुभ दिन आवेगा॥

कुन्ती

पाण्डवों की जननी कुन्ती बड़ी सौभाग्यशालिनी थीं। यद्यपि पुत्रों के साथ भांति भांति के कष्टों में उनकी आयु व्यतीत हुई, किन्तु तो भी वे आदर्श जननी की पदवी से शोभित हैं। माता के धर्म्मोपदेश और बुद्धिमत्ता से ही पञ्च पाण्डवों ने विपद्पूर्ण अवस्था में पतित होकर भी धर्म्म को नहीं छोड़ा। दुर्य्योधन के कुचक्र से जब पञ्च

पाण्डवों माता के साथ छद्मवेश से देशत्यागी हुए थे, तब किसी नगर में एक ब्राह्मण के घर में आश्रय लिया था। उस ब्राह्मण पर एक राक्षस का बड़ा क्रोध था। उसके सन्तानों को विनाश करने पर तत्पर हुआ देख ब्राह्मण बड़े भयभीत हुआ। कुन्ती देवी ने अपने आश्रयदाता को कष्ट में देख कर कारण पूँछा। तब ब्राह्मण ने अपना सारा हाल आद्योपान्त कह सुनाया। कुन्ती ने कारण जान कर उनको धैर्य्य दिया, और बोली—"आप सोच न कीजिए, आप लोगों के जीवन रक्षा करने के लिए मैं अपने पुत्रों को राक्षस के निकट भेज दूंगी"। ब्राह्मण ब्राह्मणी यह सुनकर बड़े दुःख में पड़े। परन्तु धर्म्मशीला कुन्ती ने अपने आश्रयदाता के परिवार की रक्षा करने के लिये अपने पुत्रों से कहा कि "तुम में से कोई राक्षस के निकट जाओ।" तब महावीर भीम माता की आज्ञा से राक्षस के पास गये। राक्षस के साथ बड़ा मल्ल-युद्ध हुआ। भीम बाहुबल से राक्षस का विनाश कर माता के पास आये और दरिद्र ब्राह्मण के परिवार की रक्षा हुई। कुन्ती की शिक्षा से ही उनके पांचो पुत्र धर्म्मशील कर्त्तव्य-परायण और सत्यवादी हुए थे। इसी कारण आजकल कुन्ती का नाम प्रातः

स्मरणीय हो रहा है। अन्त समय राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी देवी के साथ कुन्ती देवी भी बनबास में तपस्या करने को गईं थीं। माता के प्रभाव से ही धर्म्मराज युधिष्ठिर कष्टों में भी ईश्वर पर विश्वास स्थापन कर धर्म्म पथ में अटल रहे। कुन्ती देवी ने वन गामिनी पुत्रवधू द्रौपदी को जो सुन्दर उपदेश दिया था, उसे हर एक नारी को स्मरण रखना उचित है॥

सती गङ्गा

गङ्गा तीर के किसी देश में एक सुविज्ञ दरिद्र ब्राह्मण की सम्पा नाम की पति-प्राणा नारी थी। सम्पा के असामान्य रूप लावण्य को देख कर उस देश का राजा मोहित हो गया। और उसको वश करने के लिए उसके पास एक कुटनी दूती भेजी। परन्तु जब किसी प्रकार से उस पापात्मा का मनोरथ सिद्ध न हुआ, तब धोखे से सम्पा को नदी के तीर एक मनोहर पुष्प बाटिका में लाकर, उसे लोभ और डर दिखाने लगा। पति-प्राणा नारी राजा को निर्भय चित्त से बहुत धिक्कारने लगी। किन्तु राजा क्रोध और काम के वश होकर ज्योंही उसे पकड़ने को उद्यत हुआ

त्यों ही पतिव्रता सती दुष्टात्मा के स्पर्श रूपी कलंक से अपने को रक्षा करने के लिए और अपने क्षणभंगुर जीवन की अपेक्षा सतीत्वरत्न को अमूल्य जान तरङ्ग-मयी प्रवाहशालिनी भागीरथी में कूद पड़ी! वह दुराचारी भी उसको पकड़ने के लिये कूद पड़ा,। सती तो ईश्वर की दया से तरङ्गों के बल से तीर पर जीवित आगई, परन्तु पाप का प्रतिफल स्वरूप पापाचारी राजा डूब कर मर गया। सती के सतीत्व की रक्षा हुई, इस लिए गङ्गा के उस भाग का नाम ही तब से सती गङ्गा हुआ। धर्म्म की जय चिरकालही से होती है, परन्तु जय लाभ करने के लिए पहिले कठिन परी-क्षाओं में उत्तीर्ण होना चाहिये॥

कयाधु

भक्त शिरोमणि प्रह्लाद जी का पुण्य चरित्र तो सब कोई जानते हैं। प्रह्लाद जी जिस विश्वास और भक्ति के लिये आज तक देश-देशान्तर में प्रसिद्ध हैं, उनकी मूल तो उनकी गर्भ-धारिणी धर्म्मिका माता कयाधु थीं। एकही पिता के पुत्र होकर प्रह्लाद जी जैसे धार्म्मिक और विश्वासी बने

थे, उनके और भाई क्यों नहीं वैसे धार्म्मिक हुये? अविश्वासी, हरि विद्वेषी दानवकुल में जन्म ग्रहण करके भी प्रह्लाद जी क्योंकर ऐसे भक्त हुये? इस बात की कारण स्वरूप पुराण में एक कथा बड़ी मनोहर है।

सुनते हैं, कि कयाधु जब गर्भवती थीं, उस समय देवासुरों में बड़ा युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवताओं की जय और असुर लोगों की पराजय हुई। दानवराज हिरण्यकशप ने जब देखा कि उनके सपक्ष के लोग हार गये हैं, और जयलाभ की आशा नहीं तब उन्होंने अपनी विजय के लिये किसी से बिना कुछ कहे सुने बन में तपस्या के लिये गमन किया। रानियों और प्रजाओं की खबर भी न ली। दानवराज की रानियोंने जब सुनाकि राजा युद्ध में हार कर बन में गये हैं। तब वे सब आत्म-रक्षा के लिये बड़ी व्याकुल हुई। इस समय देवराज इन्द्र ने दानवराज की रानियों के महल में जाकर गर्भवती कयाधु को रथ में चढ़ा कर अपने राज्य को प्रस्थान किया। कयाधु भयभीत हो चिल्लाकर रोने लगी। नारद मुनि उस समय उस रास्ते से जा रहे थे। कयाधु के रोने का शब्द सुनकर नारद जी इन्द्र के पास आये। और देखा कि देवराज, कयाधु को हरण करके ले जा

रहें हैं। नारद के मनमें बड़ा दुःख हुआ, दुर्बला अबला कयाधु का शोक देखकर महर्षि के हृदय में दया का सञ्चार हुआ। मुनि ने देवराज से कहा, "हे इन्द्र! ईश्वर की कृपा से असुरों को नाश करके युद्ध में तुम लोग विजयी हुए हो। परन्तु अब तुम इन अबला दैत्य-पत्नियों को क्यों कष्ट दे रहे हो? विशेष करके यह साध्वी रानी कयाधु तो गर्भवती है?" इन्द्र ने उत्तर दिया "हे मुनि। यह रानी गर्भवती है यह जान कर ही मैंने हरण किया है, इसके जब पुत्र उत्पन्न होगा, मैं उसी समय उसे मार डालूंगा, जिससे वह भी मेरा शत्रु न हो।" नारद जी ने यह सुनतेही तनिक हँस कर कहा, "हे देवराज! तुम डरो मत, इस रानी का पुत्र बड़ा भक्त और धर्म्मशील होगा। उस पुत्र के समान हरि भक्त और कोई भी होगा या नहीं, इसमें संदेह है। इससे दैत्य कुल का बहुत ही उपकार होगा। तुम निर्भय होकर रानी को छोड़ दो।"

इन्द्र ने नारद मुनि की बातों पर बिश्वास करके कयाधु रानी को छोड़ दिया। नारद जी उस निराश्रया अनाथिनी नारी को अपने आश्रम में ले गये। वे रानी को प्रतिदिन धर्म्मोपदेश देते थे। नारद जी के

निकट धर्म्म और ज्ञान-पूर्ण उपदेश सुन कर रानी सब शोक और दुःख भूल गयी और परम शान्ति को प्राप्त हुईं। कुछ काल व्यतीत होने पर दैत्यराज हिरण्यकशिपु बन से लौट आये, और अपनी भार्य्या कयाधु को नारद जी के आश्रम से ले गये। ऐसी कहावत है, कि नारद जी कयाधु को हरि भक्ति के विषय में जो सब उपदेश देते थे, प्रह्लाद जी माता के गर्भ में बास करते समय वे सब शिक्षाएँ सुनते थे। इस कहावत का अर्थ यही है "कि गर्भावस्था में माता के मन का भाव जैसा रहता है, सन्तान उसी भाव को प्राप्त करता है। नारद जी की शिक्षा से कयाधु के हृदय में हरि की भक्ति और प्रेम का सञ्चार हुआ था और इसी कारण उनके पुत्र प्रह्लाद जी माता के प्रेम और भक्ति मिश्रित स्तन दुग्ध को पान करके, भविष्य जीवन में महा भक्त और दृढ़ विश्वासी बने और अपने गुण से सारे जगत् को मुग्ध किया। प्रकृत कथा यही है कि सुमाता से ही सुपुत्र उत्पन्न होता है। यदि हम स्त्रियां सत्य-परायण, कर्त्तव्य-परायण और विद्यावती होवें, तो हमारे सन्तान भी सत्यवादी कर्त्तव्य-परायण और विद्वान होंगे और ऐसे सुसन्तानों

से हमारे देश की, समाज की और धर्म्म की उन्नति होगी। एक अन्धा दूसरे अन्धे को कभी ठीक रास्ता नहीं बता सकेगा। जो मनुष्य आप नहीं चल सकता, वह दूसरे को कैसे चलावेगा ?

दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने जब अपने सुकुमार पुत्र प्रह्लाद को ईश्वर का नाम लेने से मना किया और प्रह्लाद जी ने पिता की आज्ञा धर्म्म-विरुद्ध जान कर पालन नहीं की तब पिता ने पुत्र को बड़े कठोर दुःख दिये पर उस दुःख के समय भी धार्म्मिका माता कयाधु पुत्र का हरि भक्ति बढ़ाने के लिये उसे उत्साह देती रही। प्रह्लाद जी को मारने के लिये दुराचारी पिता ने हाथी के पांव में बांधा, अग्नि में जलवाया, गरम तेल की जलती हुई कढ़ाई में डाला, गले में पत्थर बांध कर समुद्र में फेंकवाया, ऊंचे पहाड़ के ऊपर से नीचे गिरवाया, और बलवान मल्लों के साथ कुश्ती लड़वाई। दुष्टात्मा पिता ने भक्त पुत्र को मारने के लिये और भय दिखाने को कितने ही यत्न किए, परंतु उसकी मनो-कामना सुफल न हुई। जिसके रक्षक स्वयं दयामय विश्व-पिता हैं उसे कौन मार सकता है ?

जिस समय प्राणों से भी प्यारे पुत्र के ऊपर इतना अत्याचार हो रहा था, उस विपद् काल में भी साध्वी माता ने कहा, "हे पुत्र! कुछ भय नहीं, दयालु परमात्मा का सुंदर नाम स्मरण करो, उन्हीं पर विश्वास रक्खो, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके नाम से पाषाण भी पानी पर तैरेगा, असम्भव भी सम्भव होगा।" प्रह्लाद माता के स्नेह और उत्साह पूर्ण उपदेश को सुन कर दूने उत्साह के साथ हरिनाम गाने लगे।

सारी परीक्षाओं से उत्तीर्ण होकर सारे दानव राज्य में प्रह्लाद जी ने भक्ति का माहात्म्य प्रचार किया, और अपने अत्याचारी पिता के मरने के पीछे उस देश के राजा बने और अपनी सब प्रजा को भक्ति और प्रेम के मन्त्र में दीक्षित किया। यदि प्रह्लाद जी को ऐसी धर्म्म-परायणा माता न मिलती, तो वह कैसे घोर विपद् से बचते? धन्य है, कयाधु सती जिन्होंने ऐसे पापाचारी धर्म्महीन पति के सहवास में रह कर भी पुत्र को ऐसी अपूर्व शिक्षा दी॥

जरत्कारु

जरत्कारु मुनि बड़े ब्रह्मचारी और तपस्वी थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी, कि वे अपने नाम के अनुरूप जिस नारी का नाम होगा, और जो जीवन में कभी पति की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करेगी, ऐसी नारी के साथ विवाह करेंगे। उनकी इच्छा के अनुसार कन्या मिलने में बहुत विलम्ब हुआ, इसलिये वे बहुत बयस तक कुमार रहे। परन्तु वंश रक्षा के लिये विवाह की इच्छा उनके चित्त में होने लगी। इसी समय नागराज बासुकी अपनी सहोदरा जरत्कारु के विवाह के लिए बड़े व्याकुल हुए। जरत्कारु मुनि का नाम और इच्छा उन्होंने सुनी। भगिनी के साथ उनके आश्रम में उपस्थित हुए। और मुनि को अपना अभिप्राय कह सुनाया। नागराज के वचन सुनतेही मुनि ने अपनी कठोर प्रतिज्ञा कह सुनाई, और कहा, "जिस दिन यह नारी मेरी आज्ञा भङ्ग करेगी, उसी दिन मैं इसे त्याग करूंगा; जिसे सुनते ही वासुकी ने सम्मत होकर, जरत्कारु मुनि के साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया। भगिनी को भी यथोचित उपदेश देकर वे चले गए। इधर सती नारी बड़े प्रेम और भक्ति के साथ

पति की सेवा करने लगी। मुनि भी उसकी भक्ति के वश हो गए। एक दिन महामुनि परिश्रान्त होकर अपनी भार्य्या की जांघ में मस्तक रख कर सो गये। सारा दिन व्यतीत होने को हुआ, किन्तु तौ भी उनकी निद्रा न टूटी। सन्ध्या का आगमन देख सती नारी बड़ी चिन्ताकुला हुई क्योंकि ब्राह्मण का प्रधान धर्म्म सन्ध्या करनाही है। यदि महामुनि न जागें, तौ उनका धर्म्म भङ्ग होगा। और यदि वह आप उन्हें उठावे, तौ वे क्रुद्ध होकर सम्भवतः उसे त्याग करेंगे। स्वामी से अलग होने में जगत में मेरा अपयश होगा, और उसके भाई नागराज वासुकी भी दुःखित होवेंगे। उसने बहुत विचार कर देखा कि "अपने स्वार्थ और सुख के लोभ से स्वामी को धर्म्महानि करनी उसको उचित नहीं। ब्राह्मण का जो धर्म्म सन्ध्योपासना करना है उसका समय बीत रहा है, पति को धर्म्मच्युत करना भी सती के लिए बड़ा अधर्म्म है।" अतएव अपने सुख की आशा त्याग करके उसने पति को निद्रा से बड़े भयभीत हृदय से जगाया। जागते ही मुनि रक्तवर्ण नयन होकर क्रोधपूर्ण वचनों से भार्य्या से बोले, "हे पापिनी नारी! तूने मेरी निद्रा-भङ्ग क्यों की? तू मेरी कठोर

प्रतिज्ञा को नहीं जानती ? आज इसी क्षण तू चली जा, मैंने तेरा त्याग किया।" पति के बज्रघात तुल्य बचनों को सुन कर जरत्कारु विलाप करती करती क्षमा प्रार्थना करने लगी, परन्तु उसके पति ने अपना दृढ़ बचन नहीं पलटा। जब वह पति के चरणों पर मस्तक रख कर रोने लगी, तब पाषाण तुल्य मुनि का हृदय भी कोमल हुआ। मुनि बोले, "तू जानती है कि मेरा वचन कभी नहीं पलटेगा, किन्तु तेरे गर्भ में जो मेरा पुत्र है वह बड़ा तेजस्वी पण्डित होगा, उससे तेरा दुःख दूर होगा।" यह कह और उसे त्याग कर वे चले गये। जब नागराज को यह सम्बाद मिला तब वे वहां आए और अपनी बहिन को सान्त्वना दे उसे साथ ले गए, और बड़े आदर से उसकी रक्षा की॥

गान्धारी

गान्धार (कन्धार) देशके यदुवंश में सुबल नाम का एक राजा था। गान्धारी देवी उसी राजा की कन्या थीं। जब गान्धारी का यौवन आरम्भ हुआ, तब सुबल राजा को कन्या के विवाह के लिए चिन्ता हुई। गान्धारी परम सुन्दरी, विद्यावती

और गुणवती थी। कुरुवंश के राजा धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे थे। उसी के साथ गान्धारी का विवाह स्थिर हुआ। जब गान्धारी ने सुना कि मेरे भावी पति अन्धे हैं, तब सती नारी ने विचारा कि पति की सेवा के लिए प्रस्तुत होना उचित है। पति को अन्धा देखकर पीछे अपने मन में पति के प्रति घृणा न हो, इस लिये सती ने पति के दर्शन के पहिले ही अपनी दोनों आखें श्वेत वस्त्र की पट्टी से बांध लीं। गान्धारी पति, सास और गुरुजनों की सेवा बड़ी भक्ति के साथ किया करती। गान्धारी के दुर्योधन आदि एक सौ पुत्र और दुःशीला नाम्नी एक कन्या हुई। गान्धारी के पुत्र बड़े दुराचारी थे। युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डवों के साथ दुर्योधन की शत्रुता थी। दुर्योधन पाण्डवों से द्वेष करता था।

इसका फल यह हुआ कि राज्य-लोभ से कौरव पाण्डवों में महायुद्ध हुआ। उस युद्ध स्थान को कुरुक्षेत्र कहते हैं जो कि आज तक अम्बाले से दिल्ली जाने के मार्ग में वर्तमान है।

भारतवर्ष के सारे राजा महाराजा उस युद्ध में एकत्रित हुए थे। युद्ध-यात्रा के पहिले सब कौरव और पाण्डव गान्धारी देवी के निकट आशीर्वाद ग्रहण

करने को गये। कौरव पाण्डवों ने गान्धारी देवी के चरणों में प्रणाम कर के पूछा कि "हे माता! इस युद्ध में किसकी जय होगी ?" गान्धारी ने धर्म्म के भावपूर्ण बचनों से कहा है "हे पुत्रगण! "यतोधर्म्मस्ततोजयः" जिधर धर्म्म है, उधर ही जीत है। पांचों पाण्डवों ने यथारूप धर्म्मपालन किया है, धर्म्म के लिए उन्होंने कितना दुःख सहा है, और दुर्य्योधन आदि मेरे पुत्रों ने चिरकाल से ही धर्म्म की हानि की है। अतएव यह बचन निश्चय है, कि जयलक्ष्मी पाण्डवों के प्रति प्रसन्न होंगी।" गान्धारी के पुत्र दुराचारी और अधार्म्मिक थे, इस कारण माता ने पुत्रों से सुख की आशा त्याग कर केवल पति सेवा और परम देवता की सेवा को ही अपने जीवन का प्रधान कर्त्तव्य जान करके उसी में चित्त समर्पण किया। जब सारे पुत्र युद्ध में मर गये, तब गान्धारी देवी ने पति के साथ बाणप्रस्थ धर्म्म अवलम्बन करके, बन में बास कर, वहां पति सेवा और धर्म्म-साधन करते करते स्वर्गलाभ किया। इसीको यथार्थ पातिव्रत कहते हैं॥

सावित्री

सावित्री देवी भारत की सर्वशिरोमणि सती थी। सतीत्व के प्रभाव से इनका पवित्र नाम जगद्विख्यात और अमर हुआ है। जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से सारी पृथिवी के ऊपर अपनी ज्योति विस्तार करता है, उसी प्रकार साध्वी नारियों ने भी अपने पवित्र सतीत्व के प्रकाश से भारत सन्तानों के हृदयको प्रकाशित किया है। आज सहस्रों युगों के व्यतीत होने पर भी उनका अक्षय नाम लुप्त नहीं हुआ। ऐसी पुण्यशीला आदर्श नारी-रत्न का वृत्तान्त तो अवश्यही हमारी कन्याओं के मनन करने योग है। सावित्री देवी मद्र देश के अश्वपति नामक राजा की यशस्विनी पुत्री थीं। कहते हैं कि राजा ने बहुत काल तक पुत्र होने के हेतु सावित्री देवी की साधना की। उनके वर से सावित्री तुल्य गुणवती परमा सुन्दरी कन्या हुई। इसी कारण कन्या का नाम भी सावित्री रक्खा। अश्वपति राजा और उनकी भार्य्या ने बड़े यत्न से कन्या का पालन किया। सावित्री ने शैशव काल में शास्त्रज्ञ धर्मशील गुरु के निकट शिक्षा पाई थी जिस शिक्षा के प्रभाव से वह भी बड़ी विद्यावती गुणवती

और धर्म्मशीला नारी बनी। कन्या के रूप, गुण और शीलस्वभाव को देख कर पिता बड़े सुखी हुए, परन्तु उसकी वयोवृद्धि के साथ उनके हृदय में उसके विवाह के लिए भी चिन्ता उपस्थित हुई। परन्तु प्राचीन युगों में "कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयाति यत्नतः" इस महा वाक्य को कर्तव्य-परायण, धर्म्मशील पिता पालन करते थे। इस कारण अश्वपति ने भी कन्या को अति यत्न से सुशिक्षा दी। कन्या के सुशिक्षिता होने पर राजा ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कन्या का उपयुक्त वर अन्वेषण करो। मन्त्री लोगों के बहुत से देश और नगर भ्रमण करने पर भी कन्या के सदृश वर न मिला तब महाराज ने अपनी बुद्धिमती कन्या को आज्ञा दी, कि हे पुत्री ! तुम अब सुशिक्षिता हुई हो। तुम अपनी इच्छानुसार पति अन्वेषण करके मेरी चिन्ता दूर करो। जिससे मैं भी सुपात्र में तुमको अर्पण करके ऋण-मुक्त होऊं। सावित्री ने लज्जित होकर पिता की आज्ञा सुनी और "तथास्तु" कह कर पिता के वृद्ध मन्त्रियों को साथ लेकर देशभ्रमण के लिए यात्रा की। सुरम्य तपोवनों में जाकर धर्म्मचारी, ज्ञानी योगियों और ऋषियों के

दर्शन किये, जिनके दर्शन से विलासियों की विषय कामना भी परास्त होती है। कुछ काल पर्य्यन्त भ्रमण करते करते शाल्य देश के अन्ध राजा द्युमत्सेन के तपोवन में उपस्थित हुई। वहां उनके सुयोग्य पुत्र सत्यवान् का दर्शन करके सावित्री का सुकोमल हृदय मोहित हुआ, जैसे सूर्य्य के दर्शन से सरोज पुष्प विकसित होता है वैसे ही सावित्री के चित्त में सत्यवान् के दर्शन से प्रेमकलिका विकसित हुई। वहां से कन्या पिता के निकट आई, और अपनी यात्रा का वृतान्त उन्हें सरल भाव से कह सुनाया। कन्या की उपयुक्त पति-लाभ की वार्त्ता सुनकर अश्वपति बहुत प्रसन्न हुए। इसी क्षण वहां नारद मुनि का शुभागमन हुआ। रूप-लावण्ययुक्ता राजकन्या का दर्शन करके नारद मुनि ने महाराज से पूछा, "हे राजन् आप क्यों नहीं इस रूपयौवनशालिनी कन्या का विवाह कर देते?" महाराज ने सावित्री के वर प्राप्ति का सारा वृतान्त कहा। यह समाचार सुनतेही नारदमुनि बड़े चिन्तायुक्त बचनों से बोले, "हे महाराज! सत्यवान तो राज पुत्री के उपयुक्त अति गुणवान सुपात्र है, परन्तु वह अल्पायु हैं अर्थात् आज से ठीक एक वर्ष के पूर्ण होने से ही

उसको इस शोक का त्याग करना होगा। अतएव मेरी यही अनुमति है कि सावित्री अन्य किसीको अपना पति बनावे।" तब सती सावित्री हाथ जोड़ कर पिता और मुनि से बोली, "हे महर्षे! हे पिता! आप जानते हैं कि मैंने अपना हृदय राजपुत्र सत्यवान को अर्पण किया है; जो बस्तु एक बार दान की जाती है फिर उसे ग्रहण कर और दूसरे को अर्पण करना महा. पाप है! मैं कभी ऐसा पापजनक कार्य्य नहीं करूंगी; इसके लिये मुझे चाहे जैसी विपद् का सामना करना पड़े वह भी श्रेष्ठ है।" सती नारी एकही पति को ग्रहण करती है, अतएव मैं भी यदि आपकी आज्ञा हो तो शुद्ध चरित्र सत्यवान में ही अपना जीवन दान करके गृह धर्म्मपालन में दत्त चित्त होऊं।" नारद जी ने जब देखा कि सत्यवान की बहुत निषेध और भय सूचक कथा सुनकर भी दृढ़व्रता सती सावित्री का हृदय अटल है, तब वे राजा से बोले, "महाराज! धर्म्मशीला कन्या को निषेध करना उचित नहीं अत-एव परम विद्वान, धार्म्मिक, सत्यपरायण, दानशील और सर्व्वगुणसम्पन्न सत्यवान ही सावित्री के लिये उपयुक्त वर है। आप भगवान पर विश्वास रख कर

कन्या दान कीजिये ।" यह आशीर्वाद दे कर महा-मुनि ने प्रस्थान किया ।

अश्वपति ने कन्या को वस्त्र आभूषणों से विभूषित कर, बहुत धन और मित्रों के सहित सत्यवान के पिता के आश्रम में ले गये । अन्धे द्युमत्सेन उस समय पूजा अर्चना समाप्त कर शास्त्र पाठ सुन रहे थे, अश्वपति वस्त्र और रत्नों से भूषिता कन्या सावित्री को उन के निकट उपस्थित करके बोले, "हे महाशय ! मुझे आप कृपा पूर्वक मेरी कन्या को अपनी पुत्रवधू होने की आज्ञा कीजिए इसे मैं सत्यवान को अर्पण करके धन्य होऊं ।" परस्पर इस प्रकार से भद्रता और सम्मान सूचक वचन कहकर राजा ने सत्यवान के साथ सावित्री का विवाह दिया । विवाह के समय दान-स्वरूप कन्या को बहुत धन और अश्वरथ भी दिये । अनन्तर राजा अश्वपति कन्यादान करके स्वराज्य में लौट आये । वस्त्रालङ्कार को त्याग सावित्री ने तपस्विनी का स्वरूप धारण किया । सती सावित्री ने पितृ तुल्य ससुर और मातृ-स्थानीया सास की सेवा में अपना हृदय और मन अर्पण किया । पतिही नारी का जीवन सर्वस्व है यह जान पति की सङ्गिनी सावित्री सदा

पति के चित्त विनोदन में लगी रहती। राज पुत्री हो कर भी वनवासी ससुर, सास और पति की सारी सेवा भक्ति के साथ करती थी। गृह मार्ज्जन, पुष्पचयन, और सब प्रकार के गृहकार्य्य अति यत्न से आप करती थी। सदा पति-गृह में आज्ञाकारिणी सेविका के समान सब की सेवा करती थी। प्रतिवेशी लोग भी उसके सुशील स्वभाव को देख सदा प्रशंसा करते थे। इस प्रकार से नारी धर्म्म-पालन करते करते-एक वर्ष बीत गया। और महामुनि नारद के बताये भयानक दिन का आगमन हुआ। सती पतिप्राणा सावित्री का हृदय चिन्ता और दुःख से परिपूर्ण हो गया, परन्तु उन्होंने बड़े ही धैर्य्य के साथ अपने मनोगत भाव को मन में ही छिपा करके कर्त्तव्य पालन करने लगी। प्रति दिन राज पुत्र सत्यवान वन में काष्ठ और फल मूल तोड़ने के लिये जाते थे। उस दिन भी जब वे कुल्हाड़ा हाथ में लेकर वनगमन को उद्यत हुए सावित्री ने अति विनीत भाव से अपने ससुर को कहा, "हे देव! मैं आज आप के चरणों में एक प्रार्थना करती हूं। आप मुझे यह आज्ञा दीजिये कि मैं आज पति के साथ वन की शोभा देखने जाऊं।

ससुर ने बधू की प्रार्थना पूर्ण की। तब सावित्री हर्षित चित्त होकर पति की सहगामिनी हुई। सारा दिन अरण्य की शोभा देखते देखते सन्ध्या का आगमन हुआ उसी क्षण सत्यवान भी शिर की पीड़ा से अधीर हो कर व्याकुल हो गये। पति के शिर को अपनी जंघा में धर कर सती अति भययुक्त चित्त से वहां बैठी। कहते हैं कि इतने में वहां भीषणरूप धारण करके यमराज उपस्थित हुए। सतीचरित्र के प्रभाव से भय भीत हो कर यमराज भी उसे स्पर्श न कर सके। सती ने अपने ज्ञान, धर्म्म और प्रेम के बल से यमराज को परास्त कर पति को पुनर्जीवित किया। यमराज ने सन्तुष्ट होकर सावित्री को तीन बर दिये; जिन के प्रभाव से सावित्री के पिता को पुत्र लाभ, ससुर को चक्षु और राज्य लाभ, और सावित्री को पति का पुनर्जीवन लाभ हुआ। अनन्तर सत्यवान को जब ज्ञान हुआ, तब वे रात बीत गई देख कर अन्ध पिता माता के कारण बड़े व्याकुल होकर सावित्री को साथ लेकर शीघ्र गृह को चले। इधर पुत्र का विलम्ब देख पुत्र-वत्सल पिता माता बड़े चिन्ताकुल हो रहे थे। प्राण प्यारे पुत्र और सुशीला पुत्रबधू को देख, दोनों

परमात्मा को धन्यवाद देने लगे। सावित्री ने सास ससुर के चरणों में प्रणाम कर सारा वृतान्त कह सुनाया जिसे सुन कर तपोबनवासी सारे नर नारी, और वृद्ध पिता माता, सावित्री की प्रशंसा करने लगे। सब कोई सावित्री को आशीर्वाद देने लगे और कहने लगे कि जब तक पृथिवी में चन्द्र सूर्य्य का प्रकाश रहेगा तब तक तुम्हारी सतीत्व का यश भी सारे जगत में बना रहेगा। सावित्री के पुण्यबल से अन्धा ससुर को चक्षु और राज्य पुनर्लाभ हुआ। सावित्री भी बहु पुत्रों की माता हुई। सत्यवान् भी सती पति प्राणा पत्नी के सहवास में परम सुख से धर्म्म और न्याय के साथ राज्य-पालन करते रहे। भारतवासिनी सती स्त्रियां अभी तक सावित्री व्रत करके सावित्री की पुण्य कहानी को भक्ति के साथ सुनती हैं। विवाहिता कन्या को पिता माता गुरु जन लोग "सावित्री तुल्य हो" यही शुभ आशीर्वाद करते हैं। प्रत्येक स्त्री को सती सावित्री के पातिव्रत जीवन को स्मरण रख कर सुख दुःख में पति की सेवा करनी चाहिए जिससे वे सावित्री सी सौभाग्यवती हों॥